स्वास्थ्य-विज्ञान



भास्कर गोविंद घाणेकर

A TREATISE ON

HYGIENE IN HINDI

for Ayurvedic Students and Practitioners

By

Dr. B. G. Ghanekar B. Sc. M. B.; B. S.
Author of swasthyashikshapathavali
Lecturer in Hygiene and Medicine
Ayurved College, Hindu University
Benares.

1st Edition.

October 1929

Price Rs. 2/[illegible]/-

स्वास्थ्य-विज्ञान

लेखक

डॉ. भास्कर गोविंद घाणेकर

बी. एस् सी., एम्. बी., बी एस्. (बाम्बे)

स्वास्थ्यशिक्षापाठावलि के लेखक, हायजीन
और मेडिसिन के अध्यापक, आयुर्वेद
कॉलेज, हिंदू युनिवर्सिटी,
श्रीक्षेत्र बनारस।

संवत् १९८६ | प्रथम संस्करण | मूल्य २॥) रुपया

मुद्रक
बजरंगबली गुप्त 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, बिलेसरगंज, काशी।

निवेदन

धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ।
तच्च संसिद्धये शक्तं भवेद्यदि निरामयम् ॥

जगच्चालक परमात्मा ने अपनी पूर्ण शक्ति से इस जगत् को बनाकर नाना प्रकार के जीवधारी उत्पन्न किये हैं जिनमें मनुष्य सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि उसको इस प्रकार का ज्ञान दिया गया है कि जिससे वह इसलोक और परलोक को सुधारकर संसार का सुख भलीभाँति भोग सकता है। परंतु ये सब बातें शरीर की आरोग्यता के आधीन हैं, और आरोग्यता रहने से ही मनुष्य अपने पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकता है। इस आरोग्यता के लिये आयुर्वेद का अवतार भारतवर्ष में प्राचीन काल में हुआ है।

वत्स सुश्रुत इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधि परिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणंच ।

इसमें जो दूसरा प्रयोजन है उसको अँग्रेजी में हायजीन और आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त कहते हैं, और यह प्रयोजन आम जनता की दृष्टि से पहिले प्रयोजन की अपेक्षा अधिक महत्व का है। रोगों से पीड़ित होकर उनसे छुटकारा पाने की कोशिश करने की अपेक्षा रोग-पीड़ित न होने की कोशिश करना अनेक दृष्टि से फायदेमंद है।

प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।

इस महत्वपूर्ण विषय पर मैंने यह 'स्वास्थ्य-विज्ञान' नामक पुस्तक आयुर्वेद तथा पाश्चात्य हायजीन की अनेक पुस्तकों को पढ़कर लिखी है। यह पुस्तक खासकर आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है। विषयों के संग्रह तथा विवरण में इस बात पर विशेष ध्यान रखा गया है कि पुस्तक आयुर्वेद काँलेज तथा स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक रखी जाय। यह मेरा प्रयत्न कितना सफल हुआ है इसके निर्णय के लिये मैं सज्जन वाचकों पर ही निर्भर हूँ।

अन्त में सज्जन महाशयों से मेरी यह प्रार्थना है कि शुद्ध हिंदी न होने तथा छापे की गलती और अन्य त्रुटियों के लिये आप कृपापूर्वक क्षमा करेंगे। इस पुस्तक के विषय में जो महानुभाव कृपापूर्वक जो कुछ अपनी राय मेरे पास लिखकर भेजने की कृपा करेगें उसके लिये मैं उनका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा। दूसरी आवृत्ति का सुअवसर मिलेगा तो उन सूचनाओं पर ज़रूर विचार किया जायगा।

क्लेशः फलेनहिपुनर्फलतां विधत्ते।

श्री विश्वनाथार्पणमस्तु

विजया दशमी
संवत् १९८६

भवदीय—
भास्कर गोविंद घाणेकर



अध्याय सूची





स्वास्थ्य विज्ञान





प्रथम अध्याय



नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलांतरम् ।
कंठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥
पीत्वा चांबरपीयूषं पुनरायाति वेगतः ।
प्रीणयन् देहमखिलं जीवयञ्जठरानलम् ॥ शार्ङ्गधर ॥

हवा, पानी और भोजन ये तीन पदार्थ शरीर को धारण करनेवाले तीन आधार स्तंभ हैं। तथापि इन तीनों पदार्थों में हवा सबसे अधिक आवश्यक है, हवा के बाद पानी, और पानी के बाद भोजन। क्योंकि बिना भोजन के मनुष्य कई सप्ताहों तक जी सकता है, बिना जल के कई दिनों तक जी सकता है, लेकिन बिना हवा के कई मिनटों तक जीना भी मुश्किल है। इसी कारण से हवा प्राण कही जाती है। ये तीन पदार्थ इतने आवश्यक होने पर भी यदि योग्य परिमाण में तथा विशुद्ध अवस्था में न मिलें, तो प्राण-रक्षा करने के बजाय प्राणों के गाहक बन जाते हैं। इसलिये इनका पूरा पूरा ज्ञान कर लेना शरीर की तन्दुरुस्ती के लिये निहायत जरूरी है।

हवा

जिस प्रकार समुद्र की तली महासागर के पानी से ढकी है उसी प्रकार यह भू-मंडल चारों ओर हवा के महासागर से ढका हुआ है, और मनुष्य तथा दूसरे जीव मछली की तरह इसमें रहते हैं। जन्मते ही प्राणी आसपास की हवा को भीतर खींचता है और प्रश्वास द्वारा उसे बाहर निकाल देता है। यह श्वास-प्रश्वास की क्रिया हमारे जन्म से शुरू होकर मरते दम तक जारी रहती है। अतएव सिद्ध है कि हमें जिंदा रहने के लिये सबसे आवश्यक वस्तु हवा है।

हवा के गुण-धर्म—विशुद्ध हवा पहाड़ों की चोटियों पर तथा समुद्र के पृष्टभाग पर ही मिल सकती है। वह रूप, रंग, स्वाद-रहित होती है। स्पर्शेंद्रिय के अतिरिक्त हम इसे अनुभूत नहीं कर सकते। जिस समय वह स्थिर हो जाती है उस समय तो उसका स्पर्श भी हमें अनुभूत नहीं होता। जब वह चलती है तब हवा मालूम होने लगती है। यद्यपि हवा बिलकुल हलकी मालूम होती है तथापि हवा में वजन होता है। एक लिटर (१००० सीसी) हवा का वजन करीब करीब १.२९३ ग्राम है। दबाव का असर हवा के ऊपर बाईल (Boyle's law) के नियमानुसार होता है; और उष्णता का असर चार्लस् (charle's law) के नियमानुसार होता है।

हवा की घटना—प्राचीन सिद्धांत के अनुसार हवा एक महाभूत (element) मानी गई है। तथापि आधुनिक विज्ञान से यह साबित हुआ है कि वह कई वायुरूप पदार्थों से बनी हुई है। लेकिन हवा इन वायुरूप

पदार्थों का रासायनिक यौगिक (chemical compound) नहीं है, बल्कि इनका भौतिक मिश्रण है। कारण—

१—हवा के मुख्तलिफ़ घटकों के उनके विशुद्ध अवस्था में जो गुण-धर्म पाए जाते हैं वे ही गुण-धर्म हवा में पाए जाते हैं।

२—साधारण भौतिक विधियों द्वारा—विद्रवण, व्यापन और द्रवीकरण (Solution, Diffusion, liquefication) हवा के घटक एक दूसरे से पृथक् किये जा सकते हैं।

३—हवा के घटक जिस अनुपात से हवा में मौजूद रहते हैं, उसी अनुपात से हवा की घटना कोई रासायनिक सूत्र (Formula) से नहीं बतलाई जा सकती है।

४—ये घटक यदि उसी अनुपात में मिलाए जायं जितने कि वे हवा में मौजूद हैं, तो मिश्रण करते समय मिश्रित पदार्थ के ताप तथा आयतन में कोई भेद नहीं होता।

यद्यपि हवा एक भौतिक मिश्रण है तथापि उसके प्रधान घटकों का अनुपात हवा में कई वजह से स्थिर और एक-सा रहा करता है। आसानी के लिये घटकों के स्थिर (Regular) और अस्थिर (Accidental) दो विभाग किये जाते हैं। स्थिर घटक ऑक्सिजन, नायट्रोजन और अर्गान ये तीन हैं; और अस्थिर घटक कार्बन डायोक्साईड, पानी की भाप और गर्द ये तीन हैं। इनके अतिरिक्त स्थानिक और आकस्मिक और भी घटक होते हैं लेकिन उनकी राशी उपेक्षणीय होती है।

स्थिर घटक	राशी आकारमान से	भारमान से
आक्सिजन	७८.०६	७५.५
नाट्रोजन	२१.००	२३.२
अर्गान	०.९४	१.३

नाट्रोजन—हवा का ४/५ भाग इस वायु से बना है। इसका सर्व प्रथम और मुख्य कार्य प्राण-वायु को हलका करना तथा उसकी क्रिया-शक्ति को घटाना है। यदि सारी हवा प्राणवायु ही हो तो वह हमारी आवश्यकता से अधिक सख्त होजाती है। इसका कार्य वनस्पतियों का पोषण करने का है। घनघोर तूफ़ान और बरसात के मौसिम के समय इसका कुछ भाग नत्रिकाल में (Nitric Acid) परिवर्तित होकर पानी के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ता है और वनस्पतियों का पोषण करता है। कई वनस्पतियाँ विशेष कीटों द्वारा (Nitrifying Bacteria) अपनी मूल ग्रंथियों की सहायता से साक्षात हवा के नाट्रोजन को अपने अंदर जज्ब कर लेती है। यह वायु स्वाद, रंग तथा गंध-रहित है। यह जीवन क्रिया तथा ज्वलन क्रिया में से किसी का पोषक नहीं है। इस-लिये इसे निष्क्रिय (Azote) कहते हैं। इसका यौगिक अणु दो पर-माणु का बना है और परमाणुभार (Atomic weight) १४ है।

आक्सिजन—यह वायु संपूर्ण हवा का १/५ भाग है। यह प्राणवायु कहा जाता है और शार्ङ्गधर में इसी को विष्णुपदामृत नाम दिया गया है। यह वायु हमारे प्राणों का आधार है। इस संसार में जितना ज्वलन कर्म होता है, चाहे वह शरीर के भीतर हो या बाहर हो, वह इस वायु के सिवा नहीं हो सकता। परंतु यदि सारी हवा प्राणवायु ही हो जाय तो

स्वस्थ प्राणियों के लिये वह बहुत तेज होती। इसलिये इसके साथ नाट्रोजन जैसी निष्क्रिय हवा मिला दी है। यह वायु रंग, स्वाद तथा गंध-रहित है। यह वायु हवा से कुछ वजनदार है। एक लिटर आक्सिजन का भार १·४२९ ग्राम होता है।

ओझोन—यह एक आक्सिजन का रूपांतर (Allotropic modification) है और इसका यौगिक अणु ३ परमाणु का (O_3) बना है। इसका रंग किंचित नीलाभ है और अपने विशेष प्रकार के गंध से यह पहचाना जाता है। कृत्रिम रीत्या विद्युत प्रवाह द्वारा यह बनता है। प्रकृति में यह वायु आकाश में वज्रापात से तथा जहाँ बड़े पैमाने पर पानी की भाप होती है वहाँ पैदा होता है। इसलिये पर्वतीय स्थानों पर तथा समुद्र के पृष्ठ भाग और किनारे पर बहुतायत से पाया जाता है। हवा में इसकी राशी बहुत कम संभवत: १००० भाग में १ भाग होती है। यह वायु बहुत आक्सडायसिंग एजंट (Oxidasing agent) है इसलिये जब सेंद्रिय पदार्थों के साथ इसका संबंध आता है तब तुरन्त उनको विघटित कर डालता है। शहरों में तथा घनी बस्तियों में जहाँ हवा में सेंद्रिय पदार्थ बहुतायत से पाये जाते हैं वहाँ यह वायु नहीं पाया जाता। पानी की शुद्धि करने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

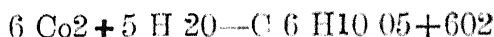
अर्गन (Argon)—इस वायु का अस्तित्व सर्वप्रथम लार्ड रेले और प्रो० रैम्से ने प्रस्थापित किया। यह वायु नैट्रोजन से भी कुछ ज्यादा निष्क्रिय है और अन्य पदार्थों के साथ रासायनिक क्रिया नहीं करता। इसका विशेष उपयोग बिजली के लट्टू (Bulb) भरने में होता है। हवा

के अन्य घटकों को पृथक करके इसे प्राप्त कर सकते हैं। नाट्रोजन से यह वजनदार है। इसका अणुभार ३९.९ है।

हवा के अस्थिर घटक

कार्बन डाय आक्साईड (Co2)—इस वायु को कार्बनिक असिड ग्यास भी कहते हैं। हवा के अस्थिर घटकों में यह वायु सबसे प्रधान है। यह निर्गंध, रंग रहित तथा खट्टे स्वादवाला है। हवा के सब घटकों की अपेक्षा यह बेहद वजनदार है। एक लिटर वायु का वजन १.९६५ ग्राम है। इसलिये यह कभी कभी गहरे, पर जल-शून्य कूँओं की तली में इकट्ठा होता रहता है। यह वायु न ज्वलनशील है न ज्वलन और जीवन का पोषक है; इसलिये इसमें रक्खा हुआ चिराग बुझ जाता है। यदि मनुष्य भी इस हवा में श्वास ले तो वह भी जीता न बचेगा। हवा के १०० भाग में. यह वायु ४.४० भाग होता है। श्वास-प्रश्वास कर्म ज्वलन तथा सडंद से इसकी मात्रा बढ़ती रहती है तथा वनस्पतियों द्वारा इसकी मात्रा घटती रहती है। इसी कारण से ग्रामों की अपेक्षा बड़े शहरों में यह वायु अधिक मात्रा में पाया जाता है तथा पर्वतीय स्थानों पर कम मात्रा में पाया जाता है। इसकी राशी को हवा के अशुद्धता का सूचक मानते हैं। मनुष्य और प्राणियों के स्वास्थ्य के खयाल से यद्यपि यह वायु इतना खतरनाक है, तथापि इस वायु से ही वनस्पतियाँ पुष्ट होती रहती हैं। इस वायु के सिवा वनस्पतियाँ उग ही नहीं सकतीं। सूर्य के प्रकाश में वनस्पतियाँ अपने पत्तों में मौजूद रहने वाले हरितरंग की (Chloro phyll) सहायता से कार्बानिक असिड

ग्यास को चूस लिया करती हैं और फिर उसको फाड़कर कार्बन को अपने शरीरस्थ धातु बनाने के काम में लाती हैं और आक्सिजन को मुक्त कर बाहर निकाल देती हैं। यह कार्य नीचे दिये हुए प्रतिक्रिया द्वारा बतलाया जाता है।



$$6\ Co2 + 5\ H\ 20 — C\ 6\ H10\ 05 + 602$$

यह क्रिया सूर्य के प्रकाश में ही हुआ करती है। रात में इसकी विपरीत क्रिया होती है यानी वनस्पतियाँ आक्सिजन को चूसती हैं और कार्बनिक असीड गैस को छोड़ती हैं। इसलिये रात के समय वृक्षों के समीप न सोना चाहिये।

नक्तं सेवेत न द्रुमम्। अष्टांग हृदय।

जलवाष्प—हवा का दूसरा अस्थिर घटक पानी की भाप है। सूर्य की गरमी हमेशा पानी को भाप के रूप में खींचा करती है। तुम जो थोड़ा-बहुत पानी अपने यहाँ के बर्तन में रख देते हो वह धीरे २ उड़ जाता है। तथापि जलवाष्प का मुख्य निकास समुद्र है। शास्त्रज्ञों की यह राय है कि सूर्य की गरमी से प्रति मिनिट में समुद्र के एक वर्ग मील पृष्ठभाग से ७०० ग्यालन पानी की भाप होती है। यह भाप की राशी भिन्न-भिन्न स्थानों पर तथा भिन्न-भिन्न समय पर बदलती रहती है। मुख्यतथा हवा की सर्दी या गर्मी पर यह राशी आश्रित रहती है। निश्चित तापक्रम पर (Temperature) हवा में जलवाष्प की राशी भी निश्चित रहती है। जब यह राशी पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है तो हवा को जल-वाष्प से परिपूर्ण (Saturated) कहते हैं। जब यह जलवाष्प की राशी इस अनुपात से न्यून या अधिक हो जाती है

तो हवा खुश्क या अधिक तर मालूम होने लगती है। यदि हवा में पानी के भाप का भाग न होता तो सूर्य की गरमी से हमारे शरीर झुलस जाते और वनस्पतियाँ जलकर भस्म हो जातीं। जब जल-वाष्प से परिपूर्ण हवा ठंडी होने लगती है तब भाप छोटी-छोटी बूँदों के रूप में जमा होने लगती है और उसे कुहरा या ओस कहते हैं।

धूलि—यह हवा का तीसरा अस्थिर घटक है। धूलि में सेंद्रिय तथा निरींद्रिय दोनों प्रकार के पदार्थों के सूक्ष्मांश पाये जाते हैं। हवा में धूलि के जो निरींद्रिय अंश पाये जाते हैं वे प्रायः बालू, अल्यूमिनम सिलीकेट, चूना, कार्बन, कोयला इत्यादि के सूक्ष्मांश से बने हुए होते हैं। जो अंश घरों में पाये जाते हैं वे घरेलू व्यवहार की चीजों के फूटने से अथवा धूमरज, राख के अंश से बनते हैं। यदि आस-पास कोयले की खानें, कारखाने, धूएँ के एंजिन, रूई, ऊन तथा रेशम बनानेवाली मीलें, लोहे, तांबा इत्यादिक के कारखाने, रासायनिक पदार्थ बनाने के कारखाने हों तो उनके खनिज तथा अन्य पदार्थों के सूक्ष्मांश भी हवा में पाए जाते हैं। सेंद्रिय पदार्थों में चर्बी, त्वचा, बाल, पीप, थूक इत्यादि के तथा मसूरिका, रोमांतिका इत्यादि विस्फोटक रोग से पीड़ित रोगियों के सूखे हुए दानों के सूक्ष्मांश पाये जाते हैं। इनके अलावा रोगोत्पादक तथा रोगानुत्पादक जीवाणु और उनके स्पोअर (spore) भी पाये जाते हैं। सामान्यत: ये जमीन में रहते हैं और जब आँधी या हवा जोर से चलने लगती है तो गर्द के साथ हवा में उड़ने लगते हैं। इनमें जो रोग-जनक (Pathogenic) जीवाणु होते हैं वे मनुष्य के शरीर में श्वास-प्रश्वास द्वारा या जख्म द्वारा प्रवेश करके अनुकूल अवस्था प्राप्त होने पर

रोग पैदा करते हैं। विशुद्ध हवा में जीवाणुओं की संख्या नगण्य-सी है तथापि बड़े बड़े शहरों में जहाँ मनुष्य की बस्ती घनी होती है ये बहुतायत से पाये जाते हैं।

धूलि हवा का एक आवश्यक घटक है क्योंकि धूलि के सिवा बादल, ओस या बरसात नहीं हो सकती। हवा में पानी का जो भाग होता है वह धूलि के कण को केंद्र बनाकर उसके चारों ओर जम जाता है। यदि हवा में धूलि न हो तो पानी का भाग प्राणियों के शरीर, वनस्पतियाँ, गृह इत्यादि पर जम जायगा।

हवा को बिगाड़ने वाले कारण

यद्यपि प्रकृति में विशुद्ध हवा पाई जाती है तथापि उसमें बिगाड़ किस तरह से पैदा होती है इस बात को अच्छी तरह जानने की जरूरत है। क्योंकि प्राणों का आधार बनने के लिये हवा का अत्यन्त स्वच्छ होना आवश्यक है। हवा खराब होने के निम्नलिखित कारण हैं।

१–श्वास-प्रश्वास क्रिया।

२–ज्वलन क्रिया।

३–सेंद्रिय पदार्थों का विघटन और सड़न।

४–धूलि और अवलंबनस्थ सूक्ष्म पदार्थ।

५–जीवाणु।

श्वास-प्रश्वास क्रिया—हर एक प्राणी जन्म लेते ही प्रथम आसपास की हवा को श्वास द्वारा फेफड़ों के भीतर लेता है और प्रश्वास द्वारा उसे बाहर निकाल देता है। यह श्वास-प्रश्वास की क्रिया प्राणी के

जन्म से शुरू होकर उसके मृत्यु तक बिला नागा जारी रहती है। परंतु श्वास द्वारा जो हवा प्राणी भीतर लेता है, वह उस हवा की अपेक्षा जो प्रश्वास द्वारा बाहर छोड़ता है एकदम जूदी किस्म की हुआ करती है। क्योंकि जिस हवा को श्वास द्वारा प्राणी भीतर लेता है वह हवा शरीर के भीतरी भागों को धोकर मैले को बाहर निकाला करती है। निश्वसित हवा में क्या क्या फर्क होते हैं वे नीचे लिखी हुई तालिका से स्पष्टतया मालूम होंगे।

वायुरूप पदार्थ	श्वसित हवा	निश्वसित हवा
आक्सिजन	२० . ९६	१६ . ४०
नाट्रोजन	७९ . ००	७९ . १९
कार्बन डायोक्साइड	० . ०४	४ . ४१

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि जो हवा हमारे प्रश्वास द्वारा बाहर आती है उसमें आक्सिजन की मात्रा घटती है, नाट्रोजन की मात्रा वही रहती है उसमें कोई भेद नहीं होता और कार्बन डायोक्साईड की मात्रा सौगुने विशेष परिमाण में होजातो है। एक मनुष्य प्रति मिनिट में १७ दफे श्वास-प्रश्वास की क्रिया करता है और हरवख्त लगभग २५ घन-इंच हवा भीतर लेता है और उतनी ही हवा बाहर छोड़ता है। निश्वसित हवा में ४ प्रतिशत कार्बन डायौक्साईड वायु रहती है तो २५ घनइंच में १ घनइंच कार्बन डायोक्साईड की मात्रा रहेगी। इसी हिसाब से एक घंटे में मनुष्य १०२० घनइंच (१ × १७ × ६०) या $\frac{१०२०}{१७२८}$ घन फूट (·६) कार्बन डायोक्साईड बाहर छोड़ता है। यह राशी परिश्रम, वय तथा लिंग भेदानुसार बदलती रहती है। कठिन परिश्रम करते

समय यह राशी बढ़कर २ घनफूट तक हो जाती है। स्त्रियों में तथा बच्चों में '६ घन फूट से कुछ कम होती है । तथापि जहाँ स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी मौजूद रहते हैं वहाँ इसकी मात्रा औसतन '६ घनफूट के हिसाब से धरना चाहिये। इस जहरीले वायु के सिवा निश्वसित हवा में जल-वाष्प और मैला भी मौजूद रहता है। किसी शीशा या पत्थर पर श्वास छोड़ने से जल-वाष्प की परीक्षा हो सकती है क्योंकि वह जल्दी गीला हो जाता है। जल-वाष्प प्रतिशत ५ हुआ करती है। त्वचा तथा फेंफड़ों से २४ घंटे में जो जल-वाष्प निकलती है वह ३० औंस (७५ तोला) के करीब होती है। यह हवा को जलवाष्प से परिपूर्ण (Saturated) करने के लिये काफी होती है।

निश्वसित हवा में जो मैला निकलता है वह प्रत्येक मनुष्य तथा उसके स्वास्थ्य की अवस्था के अनुसार बदलता रहता है। उसमें मनुष्य के मुख तथा फेंफड़ों से निकले हुए उड़नशील (Volatile) सेंद्रिय पदार्थ, उड़नशील मेदस अम्ल (Fatty acids) तथा मुख और फेफड़ों की झीली के सूक्ष्मांश रहते हैं। इनके सिवा अलकलायडल प्रकृति का (Alkaloidal) एक पदार्थ भी रहता है। ये सब पदार्थ बदबूदार होते हैं, और जीवाणुओं के लिये अच्छे पुष्टिकारक होते हैं। दूध, मांस तथा अन्य खाद्य पदार्थ इनके संपर्क से दूषित हो जाते हैं।

साधारणतया निश्वसित हवा में थोड़े ही जीवाणु पाये जाते हैं। परंतु यदि मनुष्य इँफ्लुएंजा, खांसी, राजयक्ष्मा इत्यादि फेफड़ों के रोगों से पीड़ित हो तो उसके खाँसने, छींकने और ऊँचा बोलने के समय ये रोगोत्पादक जीवाणु बाहर निकलते हैं और अन्य मनुष्यों के मुख, नाक तथा

गले की झिल्ली पर बैठकर अनुकूल परिस्थिति मिलते ही रोग उत्पन्न करने का अपना कार्य किया करते हैं ।

तत्रस्थाश्च विलंबेरन् भूयो हेतु प्रतीक्षणः ।

ते कालादिबलं लब्ध्वा कुप्यंत्यन्याश्रयेष्वपि ॥ अष्टांग हृदय०

यदि अनुकूल परिस्थिति प्राप्त न हो तो वैसे ही निकल जाते हैं या मरजाते हैं ।

इनके सिवा निश्वसित हवा का तपमान (Temperature) खून के उष्णता के बराबर होजाता है ।

निश्वसित हवामें निम्नलिखित तबदीलियाँ पाई जाती हैं—

१—आक्सिजन की मात्रा घटती है ।

२—कार्बन डायोक्साईड की मात्रा ज्यादा होती है ।

३—जल-वाष्प की मात्रा ज्यादा होती है ।

४—सेंद्रिय-मैला ज्यादा तादाद में पाया जाता है ।

५—निश्वसित हवा की उष्णता बढ़ जाती है ।

ज्वलन—हवा की खराबी करनेवाली दूसरी क्रिया ज्वलन है । ज्वलन के लिये लकड़ी, कोयला, अनेक तरह के तेल, मोमबत्ती, कोल ग्यास तथा बिजली का प्रयोग किया जाता है । बिजली को छोड़कर हर एक प्रकार के ज्वलन क्रिया में एक ही रासायनिक क्रिया हुआ करती है । बिना आक्सिजन के कोई भी चीज नहीं जल सकती । यदि किसी जलते चिराग को बंद बासन में रख दिया जावे तो वह एक दो मिनिट के अंदर बुझ जाता है । इसका कारण यह है कि उस बासन में की प्राणवायु घुटकर निकम्मी हो गयी और उसके स्थान पर कार्बन डायोक्साईड की

मात्रा बढ़ गयी। श्वास-प्रश्वास की अपेक्षा ज्वलन के लिये ज्यादा आक्सिजन की मात्रा की दरकार होती है क्योंकि यदि हवा में १० फी सदी प्राणवायु हो तो प्राणी जिंदा रह सकता है, लेकिन यदि प्राणवायु १६ ˙५ फी सदी से कम हो तो मोमबत्ती ऐसी हवा में नहीं जल सकती। सिवा कार्बन डायोक्साइड के प्रत्येक पदार्थ के ज्वलन में और भी कई प्रकार के वायु-रूप पदार्थ पैदा होते हैं। लकड़ी जलाने से कार्बन डायोक्साईड, पानी की भाप और गंधक के दूसरे वायु-रूप पदार्थ तय्यार होते हैं। यदि हवा में आक्सिजन की मात्रा पर्याप्त न हो—यथा किसी बन्द कमरे में—तो कार्बन मोनोक्साईड (Co) भी तय्यार होता है। कोयला जलाने से कज्जली, कार्बोन मोनोक्साईड, कार्बोन डायोक्साईड, गंधक के अम्ल (Sulphuric or Sulphurous Acid), कार्बोन डाय सल्फाईड (CS2), सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन (H 2S), और पानी की भाप पैदा होती है। कोल ग्यास जलाने से नाइट्रोजन, कार्बानिक ॲसिड ग्यास, कार्बोन मोनोक्साईड, सल्फरस ॲसिड ग्यास और अमोनिया पैदा होता है। तेल और मोमबत्ती जलाने से कज्जली, कार्बन डायोक्साईड और पानी की भाप पैदा होती है।

एक स्पर्म बत्ती से (Sperm Candle यह व्हेल नामक मछली के स्पर्म नामक एक चिपचिपे पदार्थ से बनी हुई रहती है) जो कि १ घंटे में १२० ग्रेन जलती है, जो प्रकाश मिलता है, उसे एक बत्ती का प्रकाश (One Candle power) माना जाता है।

बत्ती जलाने के लिये कई प्रकार के तेल प्रयुक्त किये जाते हैं। इनमें मुख्य, सरस, एरंडी और मिट्टी का तेल है। मिट्टी का तेल सब से सस्ता

तथा प्रकाश देने के कारण से बहुत उपयोग किया जाता है। हर एक बत्ती के लिये एक घंटे में कितनी आक्सिजन की मात्रा लगती है तथा उससे कार्बन डायोक्साईड कितना पैदा होता है यह जानने के लिये नीचे तालिका दी है।

बत्ती का प्रकार	आक्सिजनकी जरूरी	का० डायोक्साईडकी पैदाइश
मोमबत्ती	१०.७ घनफुट	७.३ घनफुट
मिट्टी का तेल	५.९ ,,	४.१ ,,
कोल ग्यास	६.५ ,,	२.८ ,,
कोल ग्यास इन्क्यांडिसट	४.१ ,,	१.८ ,,
बिजली की बत्ती	०.० ,,	०.० ,,

इस तालिका से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्वास्थ्य के खयाल से बिजली की बत्ती सबसे अच्छी है क्योंकि न तो इससे आक्सिजन की मात्रा घटती है, न कोई खराब वायु पैदा होती है जो हवा को दूषित करे, और न कमरे की उष्णता में लेशमात्र का भेद लाती है। बिजली के बत्ती से कुछ घटकर कोल ग्यास इन्कंडिसंट बत्ती है।

गरज, ज्वलन क्रिया से विशुद्ध हवा में श्वास-प्रश्वास से जो जो तबदीलियाँ होती हैं, वे ही हुआ करती हैं। जैसे—आक्सीजन की मात्रा घट जाना, खराब हवा की पैदाइश होना, पानी के भाप की राशि बढ़ना और हवा के उष्णता में फर्क लाना। फर्क इतना ही है कि ज्वलन क्रिया शरीर के बाहर होती है और श्वास-प्रश्वास की क्रिया शरीर के भीतर होती है।

सेंद्रिय पदार्थों का विघटन—सड़ी-गली चीजों से निकली हुई

हवा (Gas) वायुमंडल की खराबी करने वाला तीसरा कारण है। प्राणिज तथा वानस्पतिज पदार्थ जब मरजाते हैं तो उनका शरीर सड़ने लगता है। वह सड़ाने की क्रिया वायुमंडल में जो मृतोपजीवी (Saprophytic bacteria) जीवाणु मौजूद रहते हैं करते हैं। इन पदार्थों के सड़ने से हवा में बहुत नुकसान करने वाले जहरीले वायु पदार्थ (Gases) (यथा–H2S NH4 HS, CS2, CH4, NH3) निकला करते हैं।

सिवा प्राणिज तथा वानस्पतिक मृत पदार्थों के, दूषित वायु परनाले से, चौबच्चे से, अस्तबलों और गोशालाओं से तथा मल-मूत्रादिक के विघटन से पैदा होते हैं। इन दूषित वायुओं में हाइड्रोजन सल्फाइड (H2s) इतना जहरीला है कि यदि हवा के ७००० भाग में १ भाग के अनुपात में हो तो भी जीवित को खतरनाक होता है। यदि इससे भी कम मिकदार हो तो भी सिर में घुमनी, सिर में दर्द और दिमागी तथा जिस्मानी कमजोरी पैदा करता है।

धूलि और अवलंबनस्थ सूक्ष्म पदार्थ—धूलि के बारे में पहिले ही लिख चुका है इसलिये उसका यहाँ पुनर्विस्तार करने की जरूरत नहीं है। इतना ही ध्यान में रखना चाहिये कि हवा के खराबी का यह चौथा कारण है।

जीवाणु—इस संसार में दो प्रकार की जीव-श्रेणियाँ हैं। एक वनस्पति-श्रेणी और दूसरी प्राणि-श्रेणी। इन श्रेणियों में जो नीचे वर्ग के अणुस्वरूप जीव होते हैं जो कि नंगी आँखों से नहीं दिखाई पड़ते उन

को जीवाणु (Micro organisms) कहते हैं।

जंतवोणव:.....सौक्ष्म्यात् केचिद्दर्शनः ॥ अष्टांग हृदय

वनस्पति श्रेणी के जीवाणुओं को Bacteria कहते हैं और प्राणिश्रेणी के जीवाणुओं को Protozoa कहते हैं। इनमें जो सजीव प्राणियों पर जीवन बीतते हैं उनको जीवोपजीवी (Parasite) कहते हैं और जो मृत जीवों पर जीवन करते उनको Saprophyte मृतोपजीवी कहते हैं आम तौर पर ये जीवाणु रोगोत्पादक नहीं हैं। इनमें बहुत थोड़े प्रकार के जीवाणु रोगोत्पादक हैं। इनका मुख्य निवासस्थान भूमि, जल और हवा है, तथापि इसमें मुख्य जमीन है। खादवाली जमीन तथा बगीचे की जमीन में ये ज्यादा तादाद में पाये जाते हैं क्योंकि वहाँ उनको पोषण के लिये सब प्रकार की अनुकूल परिस्थिति रहती है। विशेष करके ये जमीन के ऊपरी भाग में ज्यादा होते हैं। जब आँधी या हवा जोर से चलने लगती है तो वे धूली के साथ हवा में उड़ने लगते हैं। इन ऊपर लिखे पाँच कारणों के अलावा हवा की खराबी और भी बहुत स्थानिक तथा आकस्मिक कारणों से होती है। चमार, कसाई, रंगरेज इत्यादि खराब रोजगार करनेवाले लोग अपने रोजगारों से हवा खराब कर डालते हैं।

रासायनिक, धातुओं के तथा ऊन, रेशम, रूई इत्यादिक के कारखानों से भी हवा खराब हो जाती है। मुर्दा जलाने तथा दफन करने से भी हवा खराब होती है।

प्रकृति में हवा की शुद्धि

उपर्युक्त कारणों से संसार की शुद्ध हवा निरन्तर खराब हो रही है।

तथापि इस खराब हवा को शुद्ध करने के लिये प्रकृति में साधन भी मौजूद हैं, जो कि उस खराब हवा को फिर विशुद्ध अवस्था में परिवर्तित कर रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो सारी पृथ्वी एक ही दिन में उजाड़ हो जाती। ये साधन प्रकृति की सहायता पाकर आपना काम नियमित रूप से किया करते हैं। ये साधन पाँच हैं।

१ वनस्पतियाँ।
२ वर्षा।
३—वायुका प्रवाह।
४—ओझोन, आक्सिजन।
५—सूर्य-प्रकाश।

वनस्पतियाँ—हवा को शुद्ध रखने का प्रकृति का प्रथम साधन वनस्पतियाँ है। प्राणिमात्र श्वास लेने के समय आक्सिजन को भीतर खींचता है और Co २ को बाहर छोड़ देता है। एवं प्राणियों के श्वास-प्रश्वास द्वारा आक्सिजन की राशी घटती है और Co 2 की राशी बढ़ती रहती है। परंतु वनस्पतियाँ मनुष्य से विपरीत क्रिया करती हैं। वे कार्बनिक ग्यास को चूसती हैं और आक्सिजन को छोड़ती हैं। इन दोनों विपरीत क्रियाओं से प्राकृतिक हवा की स्थिति एक-सी रहती है।

वर्षा—हवा को शुद्ध करने का प्रकृति का दूसरा साधन वर्षा है। जब बर्षाजल धारा रूप में पृथ्वी पर गिरता है तो गिरते समय कई वायु रूप पदार्थ, धूलि तथा अन्य अवलंबलस्थ पदार्थ अपने साथ लेकर गिरता है। यही कारण है जब कि बरसात के मौसम के शुरू में, हवा इन अवलंबनस्थ पदार्थों से परिपूर्ण रहती है, बरसात का पानी नहीं पीना चाहिये।

अनार्तवंच यद्दिव्यमार्तवं प्रथमंच यत् ।
लूतादितंतुविरण्मूत्रविषसंश्लेदूषितम् ॥ अष्टांगहृदय
बलाहकाद्याः समदाः कीटा लूताश्च खेचराः ।
तद्विषोत्सर्ग संसर्गोद्ग्राह्यं तत्तदाजलम् ॥

हवा की गति—प्रकृति हवा में गति या बहाव पैदा कर देती है जिससे खराब हवा झपाटे के साथ हम से दूर हो जाती है और उसके दुष्ट परिमाणु नष्ट हो जाते हैं। ताजी हवा दूषित हवा के साथ मिलते ही उसके दोष की तीव्रता कम हो जाती है और उससे जितनी हानि होनी चाहिये उतनी नहीं होती। यह वायू का बहाव निम्न बातों पर आश्रित है।

१ वायु की व्यापन शक्ति—(Di ffusion)—प्रत्येक वायु की घनता (Density) अलग अलग होती है और उसकी व्यापन शक्ति उसके घनता के वर्ग मूल के उलटे अनुपात से होती है (Grahm's law) इससे यह सिद्ध है कि जितना वायु वजनदार होगा उतनी उसकी गति कम होगी और जितना हलका होगा उतनी ज्यादा होगी। इस नियम के अनुसार कमरे की हवा दरवाजों और खिड़कियों के छिद्रों से, इटों के बीच में से, छत के फूस से, तथा कच्ची दीवालों में से निकल-कर बाहर फैलजाती है। इस वायु की गति पर विशेष भरोसा नहीं रखना चाहिये क्योंकि यह अवलंबनस्थ सूक्ष्म पदार्थों को बाहर नहीं ले जा सकती तथा इस गति के अनुसार हवा में विशेष हलचल नहीं होती।

२—गर्मी से वायु फैलकर हलका हो जाता है और सर्दी से सिकुड़-कर जड़ हो जाता है। इस भौतिक नियम के अनुसार श्वासोश्वास तथा

ज्वलन क्रिया द्वारा मकान के भीतर की हवा बाहर की हवा की अपेक्षा अधिक हलकी हो जाती है और कमरों के छिद्रों द्वारा बाहर निकल जाती है और बाहर की ठंढी हवा मकान के अंदर आ जाती है। इससे वायु में सदा गति रहती है। तथापि गर्म मुल्कों में तथा गरमी के मौसिम में बाहर की और भीतर की हवा में कोई विशेष भेद नहीं होता। इसलिये इस पर विशेष विश्वास नहीं किया जाता।

३—प्रवात (Winds)—तमाम वायु मंडल की हवा शुद्ध और एक सी रखने का प्रकृति का यह बड़ा साधन है। वायुमंडल का एक भाग सूर्य की गरमी से गरम होता है और दूसरा भाग ठंढा रहता है। ये ठंढ और शीत भाग में हमेशा अदला बदली हुआ करती है और इसी से वायुमंडल में हमेशा गति रहती है। हवा की घटकों के दृष्टी से समस्थिति रखने का सब से बड़ा साधन यही है।

ओझोन—हवा के कई घटक विशेष करके आक्सिजन और ओझोन हवा शुद्ध रखने में सहायभूत होते हैं। ओझोन में आक्सिजन से आक्सडायझिग गुण-धर्म (Oxidizing) ज्यादा है, और जब यह किसी सैंद्रिय पदार्थ से मिलता है तो उसे विघटित करके उसका जहरीला असर नाश कर डालता है। इसी कारण से ओझोन शहरों के बस्ती में जहाँ वायुमंडल में सेंद्रिय पदार्थ बहुत हुवा करते हैं नहीं पाया जाता। उसकी सब राशी इन पदार्थों को विघटित करने में खतम हो जाती है।

सूर्य प्रकाश—हवा शुद्ध रखने में सूर्य प्रकाश बहुत भाग लेता है तथापि उसका विशेष प्रभाव रोगोत्पादक जीवाणुओं पर होता है।

सूर्य-प्रकाश के प्रभाव से हवा में जीवाणुओं की संख्या कम होती है तथा उनकी रोगोत्पादक शक्ति घट जाती है। सूर्य-प्रकाश की मारक शक्ति इतनी है कि प्रत्यक्ष प्रकाश में आंत्रिक ज्वर (Toyphoid) के जीवाणु आधा से दो घंटे में मर जाते हैं तथा राजयक्ष्मा के जीवाणु दो-चार घंटे में मर जाते हैं।

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

द्वितीय अध्याय

हवा की खुलासगी

रक्तशुद्धिकरमग्निदीपनं पुष्टिवर्धनम्।
स्थैर्यकृज्जीवनीयं च प्रवातस्थानसेवनम् ॥
रक्तदुष्टिकरमग्निसदनं पुष्टिनाशनम्।
अनारोग्यमनायुष्यमप्रवातनिषेवणम् ॥

रक्त जीवन का मुख्याधार है।

देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते। सुश्रुत।

परंतु रक्त को जीवन का मुख्याधार विशुद्ध हवा ही बनाती है। खून शरीर में फिरा करता है और फिरते समय उसमें शरीर से बहुत सी अशुद्धियाँ मिल जाती हैं। ये अशुद्धियाँ स्पर्शेंद्रिय, फेफड़ों और वृक्क (Kidney) द्वारा शरीर के बाहर निकाली जाती हैं। बाहर से श्वास द्वारा जो हवा हम फेफड़ों में लेते हैं उसमें खून की अशुद्धियों में से

कार्बनिक ॲसिड ग्यास, पानी की भाप तथा उड़नशील सेंद्रिय पदार्थ मिल जाते हैं और हवा से आक्सिजन खून के साथ मिलकर सारे शरीर में फिरता है। इस अदला-बदली पर शरीर का स्वास्थ्य निर्भर है। इससे यह सिद्ध है कि श्वास के साथ भीतर लेने वाली हवा जितनी शुद्ध होगी उतनी खून की शुद्धि बेहतर होगी। यदि किसी तंग कमरे में, जहाँ हवा खुलासगी के साथ आने जाने का प्रबंध नहीं है, मनुष्य श्वासोश्वास की क्रिया करे तो वहाँ की हवा में आक्सिजन घुटकर निकम्मी हो जाती है, कार्बन डायोक्साईड की मात्रा बढ़ती है, जलवाष्प से हवा परिपूर्ण होने लगती है और फेफड़ों तथा मुख से निकले हुए उड़नशील सेंद्रिय और दुर्गंध युक्त पदार्थों से हवा बदबूदार होती है। ऐसी दशा में ताजी हवा आने-जाने का अच्छा प्रबंध न होने के कारण हमारे मुख में से निकली हुई जहरीली हवा फिर हमारे शरीर में श्वास द्वारा प्रवेश करेगी। ऐसी हवा सेवन करने से खून की शुद्धि नहीं होती, और बेचैनी, सिर दर्द, जी मिचलाना, अग्निमांद्य, आलस्य, शरीर का भारीपन, जिस्मानी और दीमागी कमजोरी इत्यादि शिकायतें होने लगती है। गंदी हवा सेवन करनेवाले लोग विशेष करके कंठनाली और फेफड़ों के रोगों को—यथा श्वास, कास, प्रतिश्याय इन्फ्लुएंझा, राजयक्ष्मा इत्यादि-अपने भीतर स्थान देते हैं और सामान्यतः उनकी प्राण-शक्ति (Vitality) निर्बल हो जाने के वजह से वे और और संक्रामक रोगों के (Infections) शिकार बन जाते हैं। यदि निश्वसित खराब हवा के अतिरिक्त मकान के मलपथ, मोरिआँ, कूड़ा-कर्कट इत्यादि का प्रबंध ठीक न हो तो उनके सड़न से हवा और भी दूषित हो जाती है और प्रातःकाल का सिर दर्द,

आलस्य, वमन, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रंथिशोथ, ज्वर, सामान्य दुर्बलता इत्यादि लक्षण पैदा होते हैं।

इस उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि स्वास्थ की रक्षा करने के लिये जहाँ तक हो सके श्वास क्रिया के लिये विशुद्ध हवा मिलना अत्यन्त आवश्यक है। यह आवश्यकता पूर्ण करने के लिये जो प्रबंध करना पड़ता है उसको प्रवीजन (Ventilation) कहते हैं। प्रवीजन के तीन मुख्य प्रयोजन है, विशुद्ध हवा मिलना, हवा को सदा गति में रखना और हवा में जो आर्द्रता का भाग होता है उसको प्रमाण में रखना। मकान के भीतर अच्छी तरह प्रवीजन रखने के लिये मकान के चारों ओर आस-पास भी अच्छा प्रवीजन होना चाहिये। इस प्रवीजन को बाह्य-प्रवीजन (External Ventilation) कहते हैं। यह प्रवीजन बड़ा महत्व का है, क्योंकि इस पर ही मकान के भीतरी प्रवीजन की स्थिति निर्भर रहती है। बाह्य प्रवीजन अच्छा होने के लिये निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

१—शहरों की गलियाँ तथा सड़कें चौड़ी और जहाँ तक हो सके सरल होनी चाहिये। इनकी चौड़ाई कम-से-कम ४०–५० फुट होनी चाहिये। जो सड़कें खास तौर पर भारी-भारी माल असबाब ढोनेवाली गाड़ियों के लिये होती हैं वे ६०–७० फुट तक चौड़ी होनी चाहिये।

२—सड़कों पर सदैव, विशेष करके गरमी के मौसम में पानी का छिड़काव करना चाहिये ताकि उनकी धूलि हवा में न उड़ जावे।

३—सड़कों पर वृक्ष इस प्रकार से लगाने चाहियें कि वे छाया करें लेकिन प्रवीजन में बाधा न डाले।

४—मकानों की ऊँचाई सड़क की चौड़ाई से ज्यादा नहीं होनी चाहिये।

५—प्रत्येक मकान के चारों ओर कम-से-कम आगे अवश्य ही एक खुला आँगन होना चाहिये।

६—एक मकान दूसरे के साथ सटा नहीं रहना चाहिये और जहाँ तक हो सके वे एक लकीर में होने चाहिये ताकि प्रत्येक मकान प्रवात का ठीक लाभ उठा सके।

७—सड़कों पर जो मैला और कूड़ा-कर्कट जमा होता है उसको सदैव उठाकर साफ रखने का ठीक प्रबंध होना चाहिये।

८—शहर में बहुत से बाग-बगीचे और खुले स्थान रखने चाहिये।

९—व्यापारिक कारखाने कभी भी बस्ती के आसपास नहीं होने देना चाहिये।

१०—खराब पेशा करने वालों की बस्ती—जैसे चमार, कसाई, रंग-रेज इत्यादि-शहर के एक अलग विभाग में होनी चाहिये।

इसी तरह से यदि शहरों में बाह्य प्रवीजन का अच्छा प्रबंध किया जाय तो तमाम शहर में नैसर्गिक और ताजी विशुद्ध हवा बिना रोक-टोक के फैल सकती है। तथापि मकानों के भीतर इस विशुद्ध हवा का ज्यादा-से-ज्यादा फ़ायदा उठाने के लिये जो विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है उसको आंतरिक प्रवीजन (Internal Ventilation) कहते हैं।

भारतवर्ष में प्रवीजन के लिये सामान्यतः नैसर्गिक प्रवात पर आश्रित रहना पड़ता है। मकानों में हवा की खुलासगी अच्छी होने के लिये काफ़ी दरवाजे और खिड़कियाँ होनी चाहिये और जहाँ तक हो सके वे आमने-सामने होनी चाहिये। कहीं-कहीं ऐसा देखा जाता है कि खिड़-

कियाँ और दरवाज़े काफ़ी होने पर भी वे दिन और रात बन्द रखे जाते हैं। इससे दरवाज़े और खिड़कियाँ होने पर भी कुछ फायदा नहीं होता। इसलिये मकान की प्रत्येक खिड़कियाँ और दरवाज़े दिनभर खुले रखने चाहिये ताकि उनमें से काफ़ी हवा और रोशनी मकान में आ सके। रात में सारी खिड़कियाँ नहीं बन्द रखनी चाहिये। हवा आने-जाने के लिये एकाध खिड़की तथा दरवाजा खुला रखना चाहिये। पहाड़ों के पास-वाले मुल्कों में, अन्य शीत देशों में, तथा जाड़े के मौसिम में जब बहुत ठंठ पड़ती है, ऐसी हालत में मकान में हवा की खुलासगी रखने के लिये विशेष प्रकार के छिद्र बनाने की जरूरत होती है। उनको वातपथ (Ventilator) कहते हैं और उनके अंतःपथ और बहिष्पथ दो प्रकार होते हैं।

अंत: पथ–(Inlet) मकान के भीतर शुद्ध हवा आने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है। इनके बारे में निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

१–ये ऐसे स्थान में होने चाहिये कि इनमें से आनेवाली हवा शुद्ध हो।

२—ये फर्श से ५–६ फूट ऊँचे स्थान पर होने चाहिये।

३—इनकी शक्ल शंकू की तरह होनी चाहिये जिनका चौड़ा मुख कमरे की तरफ और तंग मुख बाहर की तरफ हो।

४—हवा के झोंके-झपाटे से बचने के लिये इनकी रुख छत की ओर होना चाहिये।

५—अंतःपथों का अनुपात ६० घन-फूट स्थान के पीछे १ वर्ग इंच होना चाहिये या प्रत्येक व्यक्ति के लिये २४ वर्ग-इंच (६ इंच लंबा और ४ इंच चौड़ा) क्षेत्र-फल अंत:पथ होना चाहिये।

मुख्यतया निम्नलिखित प्रकार के अंत:पथ व्यवहृत किये जाते हैं।

१–एलिसन की ईटें (Ellison's bricks)—इन ईटों में शंकाकार छिद्र बनाये जाते हैं जिनका चौड़ा सिरा कमरे की ओर और नोकीला सिरा बाहर की ओर होता है। इनके द्वारा जब हवा कमरे के भीतर आती है तो झोंके के रूप में न फैल कर धीरे-धीरे फैल जाती है।

२–शेरिंगहेम का व्हाल्व (Sheringham's Valve)—यह एक द्वारिका के शकल का दरवाजा होता है जो कि कमरे के दोनों पार्श्वों में फर्श से ५–६ फूट ऊँचाई पर रहता है। यह जंजीर द्वारा लटका रहता है और नीचे से कब्जों द्वारा इस प्रकार जुड़ा रहता है कि कमरे की ओर ही खुल सकता है। यह आमने-सामने तथा बाजू से बंद रहता है। केवल ऊपर के भाग में छिद्र वाला एक पतरा रहता है जिसके बीच में एक बड़ा छिद्र होता है। इस छिद्र की लंबाई ९ चौड़ाई ३ इंच और क्षेत्रफल २७ वर्ग इंच होता है। इसी छेद द्वारा हवा अंदर प्रवेश करती है।

३–स्टीव्हन का (Steven) दराज प्रवीजक—यह एक दराज के तरह का होता है जिसका नीचे का पेंदीवाला तख्ता नहीं होता। दीवाल छेद करके इसे इसी तरह जड़ते हैं कि जब यह दराज खोला जाय तब वायु अन्दर प्रवेश कर सकती है।

४—जेनिंग का अंत:पथ—यह भी एक प्रकार का ऐसा प्रवीजक है कि जिसे कम या अधिक खोलकर अभीष्ट वायु ले सकते है।

१ खिड़कियों के अंतपथ—इसमें खिड़की का निचला तख्ता एक चार इंच गहरे और खिड़की के लंबाई के बराबर २ लंबे लकड़ी के एक

टुकड़े पर टिका रहता है और यह अचल होता है। इससे उपरले और निचले तख्ते के बीच में कुछ स्थान रिक्त रह जाता है और इसी से हवा अंदर प्रवेश करती है।

२–ढालू तख्तेवाली खिड़कियाँ–इनका आयोजन व्हेनिशिअन खिड़कियों की तरह होता है और जब चाहे उन्हें खोल या बंद कर सकते हैं।

३—कौपर का प्रवीजक— यह रेलगाड़ियों के डिब्बों में लगाया जाता है। यह वृत्ताकार होता है और वृत्त के मध्य में एक नाभि (Pivot) होती है जिस पर खिड़कियों के कई शीशे घूमते रहते हैं। इन्हें जब चाहे खोल या बंद कर सकते हैं तथा खिड़की का एक या एक से अधिक शीशा हटाकर जितना स्थान अभीष्ट हो वह खोल सकते हैं।

४—हैटन का प्रवीजक—यह खिड़की के आधे भाग में या यदि खिड़की बहुत बड़ी हो तो उसके एक भाग में प्रयुक्त किया जाता है और कमरे के अंदर की ओर खुलता है। यह एक खिड़की के तख्ते का नहीं प्रवीजक का ही काम करता है। यह हवा के सीधे झोके को और हवा क ठोस-ठोस सूक्ष्मांशों को अंदर नहीं आने देता।

विशेष प्रकार के अन्तःपथ—टोबिन की नलिका (Tobin's tube) यह बड़ी सीधी और चौकोर नालिका होती है जो कि पांच या छः फूट ऊँची होती है और कमरे के अंदर दीवाल के साथ सटी रहती है। इसका निचला सिरा कमरे के दीवाल के बाहर और कुछ नीचे को ढालू होकर रहता है ताकि ताजी हवा ऊपर उठकर कमरे में प्रवेश करे।

म्याकिनेल की नालिका–(M 'Kinnell's Ventilator) यह

एक मंजिलवाले कमरे के लिये बहुत फायदेमंद है । इसमें दो नलियां एक दूसरे के अंदर रहती हैं और ये नलिकाएँ कमरे के अंदर छतमें लगा रहती है । इनमें से अंदर की नलिका, जो कि बहिष्पथ का काम करती है बाहर के नली की अपेक्षा अधिक लंबी रहती है और ऊपर और नीचे आगे को बढ़ी रहती है । बाहर की नली जो कि अंदर की नली की अपेक्षा छोटी परंतु अधिक चौड़ी रहती है अन्त:पथ का काम करती है । इसकेद्वारा बाहर की ताजी हवा कमरे के अंदर प्रवेश करती है और अंदर की लंबी तथा तंग नली के कर्णिका पर (Rim) टकराकर कमरे के पार्श्वों में फैल जाती है । यह नलिका छत में लगी रहती है और बड़े २ एक मंजिल वाले मकान तथा गिरजा, विद्यालय और सभा भवन इत्यादिक के लिये बहुत उपयोगी होती है ।

बहिष्पथ—(Outlet) बहिष्पथ खराब हवा को मकान के बाहर निकलवाने के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं । ये भी परिमाण में अंतःपथ के बराबर होने चाहिये और छत में या छत के समीप के भाग में लगवाना चाहिये, क्योंकि अशुद्ध हवा श्वासोश्वास या ज्वलन से गरम होकर ऊपर उठा करती है । बहिष्पथ के पास यदि बत्ती रख दिया जावे तो हवाको बाहर निकाल ने में सहायता करती हैं । चपटी छतों के लिये उनमें से एक ३—१२ इंच लंबाई की नलिका गुजारते हैं जो कि ऊपर और चारों ओर से जाली द्वारा ढकी रहती है । खलरैले छतों में रिज (Ridge) प्रवीजन का प्रबंध होता है । यदि कमरे में चिमनी हो तो चिमनी की चारों ओर या एक ओर शाफ्ट (Shaft) रख देते हैं और उसके लिये अर्नंट या बाईल की द्वारिका का प्रयोग किया जाता है ।

अर्नेट का पर्दा—यह एक हलके धातु का बना हुआ टुकड़ा होता है और चिमनी के छत के पासवाले भाग में इस प्रकार लगा रहता है कि अशुद्ध हवा के ऊपर उठने पर स्वयंखुल कर उसे बाहर जाने देता है परंतु बाहर की वायु को अंदर नहीं आने देता।

बाईल का पर्दा—यह अभ्रक के टुकड़े का बना रहता है।

कृत्रिम प्रवीजन—इन उपर्युक्त विधियों में हवा की जो अदला बदली हुआ करती है वह हवा के नैसर्गिक गति-शक्ति पर निर्भर रहती है। तथापि जहां नैसर्गिक गति का फायदा उठाने में मुष्किल होता है, या जहां काफी तादाद में शुद्धा हवा की रसीद नहीं मिल सकती वहां हवा के खुलासगी के लिये विशेष प्रबंध करना पड़ता है और ऐसे प्रबंध को कृत्रिम प्रवीजन (Artificial Ventilation) कहते हैं। इसमें भौतिक विधियां हवा में गति पैदा करने के लिये प्रयुक्त की जाती है। कृत्रिम प्रवीजन की ३ विधियां है।

१—प्रेरण विधि—(Plenum System)—इस विधि में बड़े-बड़े पंखों अथवा धोकनियों द्वारा कमरे में हवा को प्रविष्ट किया जाता है, और इस दबाव के कारण कमरे की दूषित वायु बहिष्पथो द्वारा बाहर निकल जाती है। ये पंख विद्युत बाष्प अथवा ग्यास की शक्ति द्वारा चलाये जाते हैं। इसमें हवा के प्रवेश का मार्ग कमरे के नीचले हिस्से में और निकलने का मार्ग ऊपर ले हिस्से में होना चाहिये।

२—चूषण विधि (Vacuum System)—इस विधि में भौतिक क्रिया की सहायता से रेचक मार्गों द्वारा (Extraction Shafts) कमरे की हवा को बाहर निकाला जाता है। इसका

उत्तम उदाहरण यह है कि जब हम एक कमरे में चिमनी के नीचे आग जलाते हैं इससे आस-पास की हवा गरम होकर फैलकर ऊपर ऊठती है और चारों ओर की ठंडी हवा उसका स्थान लेती है। खानों में इसी विधि द्वारा हवा की खुलासगी की जाती है। रंग भूमि, सभागृह और अस्पताल इत्यादि स्थानों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

रेचन मार्ग की हवा ग्यास, बाष्प या गरम जल की नलिका द्वारा गरम की जाती है। पंखों द्वारा भी यह काम किया जाता है जो कि रेचन मार्ग के ऊपर लगे रहते है और ग्यास एंजिन शक्ति द्वारा घुमते रहते है। यह पंखों की रीति रूई, ऊन, रेशीम, इत्यादिक के कारखानों में प्रयुक्त की जाती है।

३ मिश्र विधि—(Combined method)—मिश्रविधि शायद दोनों में से बेहतर होती है। यहाँ हवा के खुलासगी के लिये प्रेरण और चूषण दोनों विधियाँ मिलाकर प्रयोग करते हैं। हवा को भीतर प्रविष्ट कराने के लिये पंखों का प्रयोग होता है और बाहर निकलवाने के लिये पंखा या आग इत्यादि का प्रयोग होता है।

कृत्रिम प्रवीजन में यह लाभ है कि कमरे के भीतर प्रवेश करने के पुर्व हवा को विशुद्ध (Filter) तथा जरूरत के अनुसार गरम या ठंड कर सकते हैं। लेकिन इसमें यह हानि होती है कि हवा को बहुत लंबे चौड़े स्थान से गुजरने के बाद कमरे में आना पड़ता है इसलिये इसकी ताजगी जाती रहती है। परिणाम यह होता है कि वहाँ के रहनेवालों के अन्दर आलस्य अथवा ग्लानि पैदा होती है। दूसरी बात यह है कि इस विधि को काम में लाने के लिये धन की आवश्यकता होती है।

हवा की अभीष्ट राशी

किसी मकान में हवा की खुलासगी ठीक है या नहीं यह जानने का सबसे आसान तरीका यह है कि बाहर की स्वच्छ हवा में से मकान में जाकर यदि उसके बू में कोई निकम्मापन या हेर फेर मालूम हो और वह मन को न भाये तो समझ लेना चाहिए कि मकान की हवा साफ और निर्मल नहीं है। विद्वानों ने अनुभव पर यह सिद्ध कर दिया है कि यदि वायु-मंडल के १००० भाग में कार्बन डायोक्साईड की मात्रा ६ बटा १० भाग हो तो उस हवा से कोई बेचैनी नहीं मालूम होती और उस हवा के सेवन से स्वास्थ्य को हानि नहीं पहुँचती। परंतु यदि कार्बन डायोक्सा-ईड की राशी ६ बटा १० भाग से ज्यादा हो तो उस हवा से स्वास्थ्य को हानि पहुँचने लगेगी और हवा के गंध में फर्क मालूम होने लगेगा। इसलिए वायुमंडल के १००० भाग में ६ बटा १० भाग कार्बन डायोक्साईड हवा के ठीक-ठीक खुलासगी का मानबिंदु (Standard of efficient Ventilation) माना गया है। विशुद्ध हवा में कार्बन डायोक्साईड की मात्रा १००० भाग में ·४ घनफूट होती है इस-लिए १००० घनफूट हवा में कार्बन डायोक्साईड यदि ·२ घनफूट ज्यादा बढ़ जावे या एक घनफूट में ·०००२ घनफूट अधिक हो जावे तो इस राशी को हवा के अशुद्धता की ग्राह्य मर्यादा (Permissible limit) मानी जाती है।

हवा की अभीष्ट राशी निकालने की प्रथम रीति—इसका सूत्र यह है—



$$\frac{\text{एक घंटे में निश्वासित कार्बन डायोक्साईड की राशी}}{\text{ग्राह्य अशुद्धता}} = \text{हवा की अभीष्ट राशी घनफूट में}$$

पहिले बतलाया गया है कि आमतौर पर एक मनुष्य १ घंटे में ·६ घनफूट Co 2 छोड़ता है, ग्राह्य अशुद्धता ·०००२ है तो उपर्युक्त सूत्र प्रत्यक्ष रूप में ऐसा होता है ।

$$\frac{\cdot ६}{\cdot ०००२} = ३००० \text{ घनफूट.}$$

अर्थात् एक मनुष्य को १ घंटे में ३००० घनफूट शुद्ध हवा चाहिए। यदि कोई मनुष्य ज्यादा परिश्रम करने के वजह से १ घंटे में ·९५ घनफूट Co 2 छोड़ता है तो उसके लिए १ घंटे में—

$$\frac{\cdot ९५}{\cdot ०००२} = ४७५० \text{ घनफूट हवा की जरूरत होगी ।}$$

दूसरी रीति—यदि एक हजार घनफूट आयतन के कमरे में, जिसमें कि हवा आने-जाने का मार्ग बिलकुल बन्द कर दिया है, एक आदमी १ घंटा तक श्वासोश्वास करे तो एक घंटे के बाद उस कमरे में १ घनफूट (·४ घनफूट हवा में मौजूद रहनेवाला और ·६ घनफूट निश्वास से पैदा हुआ) कार्बन डायोक्साईड तयार होगा। इतनी कार्बन डायोक्साईड की राशी अस्वास्थकर होने के वजह से उस कमरे के हवा में विशुद्ध हवा मिलाना चाहिए जिससे कि कार्बन डायोक्साईड की मात्रा मानबिंदु तक अर्थात् एक हज़ार भाग में ·६ घनफूट तक आ जायगी । यदि उस कमरे की हवा में २००० घनफूट हवा मिला दी जावे तो यह काम हो सकता है क्योंकि ३००० घनफूट में १·८ घनफूट (१ घनफूट प्रथम की राशी और ·८ घनफूट विशद्ध हवा में

रहनेवाली राशी) कार्बन डायोक्साईड राशी याने १००० घनफूठ में ·६ घनफूट होगी। इस रीति से भी यह स्पष्ट है कि औसतन मनुष्य के लिए एक घंटे में ३००० घनफूट विशुद्ध हवा चाहिए। हवा की अभीष्ट राशी निकालने के प्रथम रीति में जो सूत्र बतलाया है उसमें यदि दो राशी ज्ञात हो तो तीसरी अज्ञाति-राशी निकालने के लिए सिर्फ अदला-बदली करने से काम हो सकता है।

उदाहरण—किसी ६००० घनफूट आयतन के कमरे में ५ मनुष्य ६ घंटे तक श्वासोश्वास कर रहे है और उस कमर में प्रति घंटा ८००० घनफूट हवा बाहर से आ रही हैं, तो उक्त छः घंटे के बाद कमरे के हवा में $Co2$ की मात्रा कितनी होगी।

एक मनुष्य एक घंटे में ·६ छनफूट कार्बन डायोक्साईड छोड़ता है तो पांच मनुष्य छः घंटे में ·६×५×६=१८ घनफूट का. डायोक्साईड छोडेंगे।

हवा की प्रथम राशी ६००० घनफूट है और प्रति घंटा ८००० नयी आ रही है तो छः घंटे में ६०००+४८०००=५४००० घनफूट होगी। तस्मात्

$$\frac{१८}{Co\ 2 \text{ की मात्रा}} = ५४०००$$

इसकी अदला-बदली करने से

$$\frac{१८}{५४०००} = Co\ 2 \text{ की मात्रा} = ०·०००३३ \text{ प्रति}$$

घनफूट या ·०३३ प्रतिशत.

सामान्यतः हवा की राशि के प्रमाण ये हैं।

युवा पुरुष=३६०० घन फुट

" स्त्री =३००० "

बच्चा=२००० "

जहां स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी मौजूद रहते हैं वहां हर एक के लिये ३००० घनफुट के हिसाब से हवा चाहिये।

खानों में काम करनेवालों को फुर्ती के साथ काम करने के लिये ६००० घनफुट के हिसाब से हवा की जरूरत पड़ती है।

रोगियों के लिये हवा की अभीष्ट राशि—

तंदुरस्त की अपेक्षा बीमार से ज्यादा खराब हवा मैला इत्यादि निकलता है इसलिये बीमार को ज्यादा साफ हवा की जरूरत है। उसका प्रमाण यह है कि मामूली बीमारी में रोगी को तंदुरुस्त से सवाई साफ हवा चाहिये और शीतला, आंत्रिक-ज्वर इत्यादि गंभीर बीमारियों में दुगुनी हवा चाहिये।

सामान्य रोगावस्था	४००० घनफुट
गंभीर रोगावस्था	६००० घनफुट

पशुओं के लिये हवा की राशि—मनुष्यों की तरह पशुओं को भी स्वच्छ हवा की जरूरत है। स्वच्छ हवा न मिले तो वे भी अस्वस्थ हो जाते हैं। इनके लिये हवा की राशि निकालने के वास्ते इनका भार देखना पड़ता है। साधारण नियम यह है कि प्रति पौंड भार के पीछे प्रति घंटा २५ घनफुट हवा चाहिये। घोड़ा या गौ के लिये १०००० से २०००० घनफुट हवा चाहिये। सच पूछिये तो जानवरों को खुली हवा

में ही रखना चाहिये। घरेलू जानवरों की अपेक्षा जंगली जानवरों को ज्यादा हवा की जरूरत रहती है, तथा छोटे जानवरों को भार के प्रमाण की अपेक्षा ज्यादा हवा मिलना चाहिये।

प्रकाश के लिये हवा की राशि—प्रकाश के लिये जिनका उपयोग किया जाता है उनकी तालिका तथा उनसे निकलनेवाली कार्बन डायोक्साईड की राशि पृष्ठ १४ पर बतलाई गयी है। बत्ती के लिये सामान्य नियम यह है कि यदि किसी बत्ती से १ घंटे में १ घनफुट Co2 की राशि निकलती हो तो उस बत्ती को १ घंटे में एक हजार घनफुट हवा चाहिये।

मनुष्य के लिये स्थान की आवश्यकता—हर एक मनुष्य के लिये कम-से-कम कितनी जगह चाहिये उसका परिमाण हवा के आवागमन पर आश्रित रहता है। यदि हवा खूब खुलासगी के साथ आया-जाया करे तो थोड़ी जगह में भी कई आदमी अच्छी तरह से रह सकते हैं, और यदि हवा आने-जाने का प्रबंध उचित न हो तो अधिक जगह में भी अच्छी हवा नहीं मिल सकती। सामान्यत: एक मनुष्य के लिये एक हजार घनफुट स्थान अवश्य होना चाहिये जो कि १० फुट लंबे, १० फुट चौड़े, और १० फुट ऊँचे मकान के रूप में हो। ऐसे स्थान में हवा को १ घंटे में ३ बार बदलना पड़ेगा। यदि हवा के खुलासगी का प्रबंध बहुत ही ठीक हो तो हवा एक घंटे में ५-६ बार बदल सकती है। इसी हिसाब से अच्छे खुलासे मकान में कम-से-कम प्रति मनुष्य ६०० घनफुट जगह चाहिये। सभागृह, रंगभूमि इत्यादि स्थानों में, जो कि थोड़े समय के लिये काम में लाये जाते हैं, प्रत्येक मनुष्य के लिये २५० से ३०० घन-

फुट जगह चाहिये। अस्पतालों में जहाँ रोगी रहते हैं वहाँ हर एक रोगी के लिये १२०० घनफुट स्थान चाहिये और फर्श का क्षेत्रफल जगह के $\frac{१}{१२}$ भाग से कम नहीं होना चाहिये।

किसी स्थान में प्रमाण से अधिक मनुष्य इकट्ठा होने से उस स्थान में बेचैनी-सी मालूम होने लगती है, मन खिन्न रहता है, आलस्य बढ़ता है और जिस्मानी और दीमागी कमजोरी महसूस होने लगती है। इसका कारण हवा की खराबी ही है। तथापि श्वासोश्वास से हवा में दो प्रकार की खराबी हुआ करती है, एक रासायनिक और दूसरा भौतिक। अब तक विद्वानों की यह राय थी की हवा में जो रासायनिक तबदीलियाँ यथा-आक्सिजन की मात्रा घटना, कार्बन डायोक्साईड की मात्रा बढ़ना, और दूसरे जहरीले वायु रूप पदार्थ पैदा होना—श्वासोश्वास से पैदा होती हैं उनसे उपर्युक्त लक्षण पैदा होते हैं; तथापि लीओनार्ड हिल (Leonard Hill) नामक शास्त्रज्ञ ने बहुत खोज करके यह साबित किया है कि बेचैनी का कारण रासायनिक तब्दीलियाँ नहीं हैं, हवा में जो भौतिक फर्क—यथा, हवा की उष्णता बढ़ना, पानी की भाप बढ़ जाना और हल-चल बन्द हो जाना (Stagnation) होते हैं, वे हैं। हवा में जो भौतिक तब्दीलियाँ होती हैं उनका शरीर के उष्णता-नियमन से गाढ़ा सम्बन्ध (Heat regulating Mechanism) हुआ करता है। यदि किसी कमरे में भीड़ की वजह से हवा स्थिर, गरम और तर हो गई तो शरीर के त्वचा से निकलनेवाली पानी की भाप शरीर के बाहर ऐसा तर हवा का आवरण बना देती है, (Saturated layer of Aerial envelope) जिसमें कि त्वचा से अधिक पानी की भाप निकलना मुश्किल हो जाता

है। इसी कारण से बेचैनी इत्यादि लक्षण मालूम होने लगते हैं। यदि ऐसी अवस्था में हात के या बिजली के सहायता से पंखा चला दिया जावे तो बेचैनी दूर हो जाती है यह अनुभव सिद्ध बात है। इसका कारण यह है कि पंखों की सहायता से तर हवा का आवरण दूर हो जाता है और शरीर की उष्णता नियमन के लिये जितनी उष्णता शरीर से नष्ट होनी चाहिये उतनी उष्णता नष्ट हो जाती है।

प्रवीजन के उचितता का निर्णय—इसका निर्णय करने के लिये कमरे का घनफल देखना चाहिये। यदि कमरा नियमित आकृति का हो तो उसका क्षेत्रफल और घनफल निकालने का तरीका नीचे बतलाया है। उस घनफल में से कुर्सी, मेज इत्यादि के घनफल घटा देना चाहिये। बिस्तरे के लिये १० घनफुट और १ मनुष्य के लिये ३ घन फूट घनफल स्थान गिनते हैं। यदि कमरा अनियमित आकार का हो तो उसके नियमित आकार के कई हिस्से बनवाना चाहिये और फिर हर एक का घनफल निकालकर कमरे का घनफल निकलवाना चाहिये।

क्षेत्रफल का नियम

(१) वृत्त का क्षेत्रफल = व्यास का वर्ग × ०·७८५४

(२) वृत्त की परिधि = व्यास × ३·१४१६

(३) दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल = दोनों व्यासों का गुणनफल × ०·७८५४

(४) दीर्घवृत्त की परिधि = दोनों व्यासों के योगफल का आधा × ३·१४१६

(५) त्रिभुज का क्षेत्रफल = आधार × $\frac{1}{2}$ लंब

(६) सम चतुर्भुज का ”=आधार × लंब

(७) गोल का पृष्ट भाग=व्यास का वर्ग × ३·१४१५८

घनफल

(१) घन का घनफल=लंबाई × चौड़ाई × ऊंचाई

(२) ठोस त्रिभुज का ” =त्रिभुज का क्षेत्रफल × $\frac{1}{3}$ ऊंचाई

(३) बेलन का ” =एक तरफ का क्षेत्रफल × लंबाई

(४) शंकू का ” =आधार का क्षेत्रफल × $\frac{1}{3}$ ऊंचाई

(५) गुम्बज का ” =आधार का क्षेत्रफल × $\frac{1}{3}$ ऊंचाई

(६) गोल का ” =व्यास का घन × ०·५२३६·

इसके बाद यह भी जानना चाहिये कि उस कमरे में कितने आदमी रहते हैं। एक घंटे में एक व्यक्ति के लिये जितनी घनफुट हवा अभीष्ट हैं उस राशि को आदमियों की संख्या से गुणा करो तो यह गुणनफल हवा की कुल घनफुट राशि है जो कि उस कमरे में एक घंट में आना चाहिये। इसके बाद हवा का प्रवाह किस दिशा की ओर है यह देखना चाहिये। इसके लिये अंतःपथ और बहिष्पथों की परीक्षा करना चाहिये। इसका आसान तरीका यह है कि कागज या रूई के फोये को जलाकर इसका धूआं इन पथों के पास ले जावो और किस तरफ धूआं जा रहा है यह देखो। अंत:पथ और बहिष्पथों के क्षेत्रफल को मिलाकर इस योगफल को कमरे में रहनेवाले मनुष्यों के संख्या से भाग देकर प्रति मनुष्य के हिस्से में अंत:पथ या बहिष्पथों का कितना क्षेत्रफल आता है वह निकल आवेगा।

हवा की गति मापन करने के लिये वायुगतिमापक (Anemometer) नामक यंत्र का प्रयोग किया जाता है। यह यंत्र अंतःपथ के केंद्र (Centre) में नहीं रखना चाहिये परंतु उस स्थान पर रखना चाहिये जो कि अंत:पथ के किनारे से इतनी दूरी पर हो जितना कि यंत्र के व्यास का $\frac{३}{८}$ भाग है। इस स्थान में रखने से हवा के औसतन वेग का ठीक-ठीक पता लग जाता है। एक मिनिट उस स्थान पर रखने से जो वायु की गति मालूम होगी उस गति से अंत:पथ के क्षेत्रफल को गुणा करो तो एक मिनिट में कितनी घनफुट हवा भीतर आती है यह मालूम होगा। हवा की गति जानने के लिये हाड्रोजन से भरे हुए सेल्युलाइड के गेंद का भी प्रयोग किया जाता है।

श्वास-प्रश्वास के नियम

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि शरीर की रक्षा करने के लिये निर्मल हवा बड़ी मूल्यवान् चीज है, इसलिये हरएक आदमी को चाहिये कि उसे पाने के लिये प्रयत्न करें। यद्यपि और-और तरह से दूषित हवा को प्रकृति शुद्ध कर रही है तथापि बस्ती, गाँव और शहरों की हवा खुली जगह की हवा से कहीं खराब रहती है। इसलिये ऐसे घूटी तथा बंद हवा में से निकलकर थोड़े समय के लिये नित्य प्रति खुली हवा में घूमने से शरीर को बहुत लाभ होता है। एक तो घूमने से शरीर के अवयवों को कसरत होती है और फिर बाहर ताजी हवा मिलती है। तथापि यदि ताजी विशुद्ध हवा का पूरा-पूरा फायदा उठाना हो तो श्वास-प्रश्वास के कुछ सामान्य नियमों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

अतः नीचे हवा के सेवन के विषय में कुछ साधारण नियम दिये हैं जिन्हें यथासाध्य सब को ही पालन करना उचित है।

१—नासिका द्वारा सदा श्वासोश्वास की क्रिया करो। श्वास और प्रश्वास हमेशा नासिका से लेना और त्यागना उचित है। जो लोग मुखरंध्र के द्वारा श्वास-प्रश्वास की क्रिया करते हैं उनके फेफड़ों में कुछ न कुछ विकार होने की संभावना होती है। जो हवा हम श्वास से भीतर लेते हैं वह अनेकधा फुफ्फुस के उपयोगी नहीं होती। उसका कारण यह है कि उक्त हवा सूखी या गीली, गर्म या ठंडी, तथा धूलि या मैल-मिश्रित होती है और उसमें जहरीले वायु रूप पदार्थ मिश्रित होने की संभावना रहती है। ऐसी हवा को शरीर के भीतर लेना हो तो उक्त दोषों को हटाना चाहिये। नासिका द्वारा श्वास लेने से उक्त दोषों का निराकरण होकर हवा फुप्फुस के उपयोगी बनकर भीतर जाती है। नासिका की झिल्ली (Mucous Membrane) आर्द्र तथा अनेक स्नायु-सिरा और बालों से युक्त रहती है। जब हवा नासिका से भीतर प्रवेश करती है तब यदि उसके साथ ठोस-ठोस बाह्य पदार्थ हों तो नाक के बालों में अटक जाते हैं। तदनंतर जब हवा पीछे और ऊपर के भाग में जाती है तो धूलि, मैला इत्यादि सूक्ष्मांश नाक के आर्द्र झिल्ली में चिपक जाते हैं।

नाक का मार्ग मुख मार्ग से लंबा और तंग है और उसके सिरा समूह में रक्ताधिक्य रहने के वजह से श्वासोश्वास की हवा शरीर के ताप के बराबर ऊत्तप्त हो जाती है। नाक के अंदर छोटी छोटी ग्रंथियां

होती हैं जिनमें होकर एक प्रकार का जलीय पदार्थ निकलकर श्वास के वायु को कुछ आर्द्र करता है।

मगज के तंतुओं की पहिली जोड़ी जिसको 'गंधनाडी' (Olfactory nerve) कहते हैं, गंध परखने के काम के लिये नाक में गयी है और उसकी बारीक बारीक शाखाएं नाक के ऊपरी भाग में जाकर फैली हैं। बाहर के पदार्थ अथवा उनकी बास, जब नाक के समीप आती है तब उस पदार्थ के या गंध के परमाणुओं को नाक के तंतु ग्रहण कर लिया करते हैं और मगज को उसके गंध का ज्ञान देते हैं। इसलिये नाक से श्वास लेने में यदि हमें कोई खराब हवा की सूचना मिले तो हम श्वास लेना बंदकर उस स्थान से दूर निकल पड़ते हैं। संक्षेप में, नासिका द्वारा श्वास लेने से जीव या अन्यान्य धूलि आदि बाधाओं से मनुष्य बचता है, हवा शरीर के ताप बराबर उत्तप्त और आर्द्र होकर फेफड़ों में प्रवेश करती है, और हवा में यदि कोई जहरीला या स्वास्थ्यहानिकर पदार्थ हो तो उसकी सूचना मनुष्य को मिलती है। इसलिये वायु सेवन हमेश नासिका द्वारा करना उचित है।

२—पूरी और गंभीर श्वास लेना चाहिये। पूरी गंभीर श्वास लेने से शरीर के भीतर प्राणवायु अधिक परिमाण में पहुंचता है। फेफड़ों के सारे वायुकोष अच्छी तरह से फैल जाते हैं और उनमें जो अशुद्ध रक्त आता है उसकी शुद्धि ठीक होकर पूरी तौर से रक्त आक्सिजन के साथ मिल सकता है। इस तरह से गंभीर श्वास लेने में रक्त की शुद्धि भली भांति होती है।

३—पूरी तरह से निश्वास भी करना चाहिये ताकि हवा में जो अशुद्धियां मिली रहती हैं वे सब निकल कर बाहर जा सकें।

४—सिर सीधा रखकर श्वास-प्रश्वास की क्रिया करना चाहिये।

समं काय शिरो ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

जब माथा झुका रहता है तो फेफड़ों का उपर का हिस्सा (Apex) सिकुड़ता है और उस भाग में हवा खुली तौर से नहीं प्रवेश कर सकती और रोगोत्पादक जीवाणुओं को वहाँ निवास करने का सुयोग मिलता है। यक्ष्मकीट (Bacillus Tuberculosis) सर्व प्रथम फुफ्फुस के ऊपरी भाग में ही आपना डेरा जमा देते हैं।

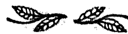
अब तक हवा के सामान्य गुणधर्मों का विवरण हो चुका। तथापि विशिष्ट दिशा के हवा में जो विशिष्ट गुणधर्म होते हैं वे पाश्चात्य वैद्यक में न होने के कारण, आयुर्वेद से दिये जाते हैं।

अथ वातगुणान वक्ष्यामः (सुश्रुत, सूत्रस्थान अध्याय २०)

पूर्वः सुमधुरः स्निग्धो लवणश्चैव मारुतः।
गुरुर्विदाह जननो रक्त पित्ताभिवर्धनः॥ २४॥
क्षतानां विषजुष्टानां व्रणिनः श्लेष्मलाश्रये।
तेषामेव विशेषेण सदा रोगविवर्धनः॥ २५॥
वातलानां प्रशस्तश्च श्रांतानां कफशोषिणाम्।
तेषामेव विशेषेण व्रणक्लेदविवर्धनः॥ २६॥
मधुरश्चा विदाहीच कषायानुरसो लघुः।
दक्षिणो मारुतः श्रेष्ठश्चक्षुष्यो बलवर्धनः॥ २७॥
विशदो रुक्ष परुषः खरः स्नेह बलापहः।

रक्तपित्त प्रशमनो नचवात प्रकोपणः ॥ २८ ॥
पश्चिमो मारुस्तीक्ष्णः कफमेदो विशोषणः ।
सद्यः प्राणक्षयकरः शोषणस्तु शरीरिणाम् ॥ २९ ॥
उत्तरो मारुतः स्निग्धो मृदुर्मर एव च ।
कषायानुरस, शीतो दोषाणांचाप्रकोपणः ॥ ३० ॥
तस्माच्च प्रकृतिस्थानां क्लेदनो बल बर्धनः ।
क्षीणक्षय विषार्तानां विशेषेणतुपूजितः ॥ ३१ ॥

पूर्व दिशा का पवन मधुर है, चिकना है, नमकीन है, भारी है दाह करता है, रक्त-पित्त को बढ़ानेवाला है, विषैले व्रणों को और उन व्रणयुक्त पुरुषों को जिनकी कफ प्रकृति है इन दोनों को विशेष करके रोग को बढ़ाने वाला है, वात प्रकृति के लिये गुणकारी है, थके हुए और कफ शोषियों को विशेष करके व्रण में पीड़ा बढ़ानेवाला है। दक्षिण का पवन मधुर है, अविदाही है, कुछ कषैला है, हलका है, श्रेष्ठ है, नेत्रों का हितकारी है, बल को बढ़ानेवाला है, रक्त-पित्त को शमन करनेवाला है और वायु भी नहीं करता। पश्चिम का पवन फैलनेवाला है, रूखा है, कठोर है, स्निग्धता और बल का दूर करनेवाला है, तीक्ष्ण है, कफ और मेद का शोषक है, तत्काल प्राणों का नाश करनेवाला है और शरीर धारियों का शोषण करनेवाला है। उत्तर का पवन स्निग्ध है, मृदु है, मधुर है, कुछ कषैला है, शीतल है, दोषों का नाश करनेवाला है, अतएव यह पवन उन मनुष्यों के लिये श्रेष्ठ है जो अपनी प्रकृति स्थित है अर्थात् विकार रहित है, बल का बढ़ाने वाला है। क्षीण, क्षय, और विष रोगियों को बहुत श्रेष्ठ है।



तृतीय अध्याय

जल

अन्नपाने सलिलमेव श्रेष्ठम् । सर्व रसयोनित्वात् सर्वभूत सात्म्याज्जीवनादि गुणयोगाच्च ।। वाग्भट ।।

शरीर की तंदुरुस्ती अच्छी रखने के लिये तथा जिंदगी को लंबा बनाने के लिये आवश्यक वस्तुओं में दूसरी आवश्यक वस्तु पानी है। पानी की कीमत अथवा पानी के आवश्यकता का ज्ञान, उसकी दुष्प्राप्यता अथवा जरूरत पर पानी के न मिल सकने पर महसूस होने लगती है। जिस समय थोड़ी देर के लिये पानी नहीं मिलता उस समय प्राणी पानी के लिये छटपटाने लगता है और ऐसा मालूम होने लगता है मानों प्राण जा रहे हैं। संस्कृत में इसी वजह से पानी को 'जीवन' संज्ञा दी गयी है। क्या वनस्पति और क्या प्राणी कोई भी इसके बिना जीवित नहीं रह सकता। मनुष्य-शरीर में तो करीब-करीब पौन हिस्सा जल-तत्व है। जल ही शरीर में भोजन पचाने में मदद करता है और जल के सहारे ही शरीर के भीतर के गंदे पदार्थ स्वेद, मूत्र इत्यादि द्वारा बाहर निकलते हैं।

पीने के अलावा रसोई बनाने के लिये, बर्तन-भांडा माँजने के लिये, कपड़ा-लत्ता धोने के लिए, घर-द्वार, मोरियाँ साफ रखने के लिए पानी की जरूरत होती है। इन घरेलू कामों को छोड़कर कल कारखानों के लिए, शहर की सफाई रखने के लिए, सड़कों पर छिड़काव करने लिए, आग बुझाने के लिए, परनाले-मोरियाँ साफ रखने के लिए तथा और-

और कामों के लिए पानी की जरूरत पड़ती है। जैसी-जैसी मनुष्य जात सुधर रही है वैसी ही पानी की माँग बढ़ रही है।

फी आदमी को रोजाना अलग अलग कामों के लिए कितना पानी चाहिए यह नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट होगा।

घरेलू	पीने के लिए	०·३३ ग्यालन
	रसोई के लिए	०·७५ ,,
	हाथ पाँव धोने के लिए	५·०० ,,
	बर्तन सफा करने के लिए	३·०० ,,
	कपड़ा धोने के लिए	३·०० ,,
	टट्टी पायखाने के लिए	५·०० ,,
	कल कारखानों के लिए	५·०० ग्यालन
म्युनसीपल	रास्तों पर छिड़काव, आग बुझाना, बाग-बगीचे के लिए, परनाले धोना इत्यादि।	५·०० ,,
	कुल	२७·०८ ,,

यह राशि सामान्यतया दी गई है तथापि पानी की आवश्यकता मनुष्यों के रहन-सहन, मौसम तथा देश की आबहवा पर आश्रित रहती है। ठंडे देशों में तथा ठंडे मौसम में इतनी पानी की आवश्यकता नहीं होती जितनी गरम देशों में तथा गरम मौसम में हुआ करती है। बड़े-बड़े शहरों में पानी की राशि निश्चित करते वख्त उपर्युक्त सब बातों का अच्छी तरह से खयाल करके निश्चय करना चाहिये। मनुष्यों को पानी की राशि जरूरत से कम मिले तो स्वास्थ्य की दृष्टि से विघातक है।

भारतवर्ष के बड़े-बड़े शहरों में औसतन नीचे दी हुई पानी की राशि फी आदमी को मिलती है।

बम्बई	४० · ०० ग्यालन
कलकत्ता	३५ · ०० ,,
कानपूर	२९ · ०० ,,
बनारस	२९ · ७१ ,,
आगरा	२४ · ०६ ,,
इलाहाबाद	२१ · ८५ ,,
मद्रास	१८ · ०० ,,
लखनऊ	१५ · ७१ ,,

अस्पतालों में सर्वसाधारण से दुगुना यानी ४० से ५० ग्यालन पानी प्रति मनुष्य को देना चाहिये। जानवरों के लिये जो पानी की राशि लगती है वह उनकी कद, परिश्रम तथा ऋतु-भेद पर आश्रित रहती है। तथापि सामान्यतः गौ और बैलों के लिये ५ से ६ ग्यालन पानी और घोड़ों के लिये ६-८ ग्यालन पानी कम से कम मिलना चाहिये।

पानी के गुण-धर्म

निर्गंधमव्यक्त रसं तृष्णाघ्नं शुचि शीतलम्।
अच्छं लघु च हृद्यं च तोयं गुणवदुच्यते ॥ सुश्रुत ॥

विशुद्ध पानी पारदर्शक, गंध, स्वाद और रंग-रहित होता है। प्रकृति में पानी तीन रूप में यानी घनरूप, तरलरूप तथा वायु-रूप में पाया जाता है। यह ० सेंटिग्रेड या ३२ फ्यारन हीट अंश पर बर्फ के शकल में तबदील होता है और उस वक्त उसका आकार कुछ बढ़ता जाता है।

उसकी ज्यादा से ज्यादा घनता (Density) ४ सेंटिग्रेड पर होती है। १०० सेंटिग्रेड या २१२ फ्यारनहीट अंश पर पानी उबलने लगता है और भाप के रूप में बदल जाता है। यह उत्क्कथन बिन्दु (Boiling Point) वायुमंडल के भार पर (Atmospheric pressure) निर्भर रहता है। प्राचीन मतानुसार पानी एक महाभूत माना गया है। आधुनिक भौतिक विज्ञान से पानी एक रासायनिक यौगिक है जिसमें दो भाग हायड्रोजन और एक भाग आक्सिजन (H20) होता है।

जल प्रायः सर्व घोलक है और जितना ही शुद्ध होता है उतनी ही अधिक घुलाने की उसमें समाई होती है, इसी कारण से प्रकृति में विशुद्ध जल मिलना मुश्किल है तथापि जिसमें निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं उस जल को विशुद्ध मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

१—पानी पारदर्शक, गंध, स्वाद और रंग-रहित होना चाहिये।

२—उसमें ठोस पदार्थों की विशेषतः चूना म्याग्नेशिअम की राशि, उचित से अधिक नहीं होना चाहिये। ठोस पदार्थों की उचित मात्रा प्रति ग्यालन ८ ग्रेन मानी गई है, जिसमें १ ग्रेन उबालने पर उड़ जाना चाहिये।

३—उसमें किसी प्रकार के नाट्रोजन युक्त सेंद्रिय पदार्थ नहीं होना चाहिये। जिस स्थान के पानी में स्वतंत्र अमोनिया की पर्याप्त राशि के अतिरिक्त प्रति दस लाख भाग में ० ' ०५ भाग अल्ब्युमिनाईड आमोनिया हो तो उस पानी को दूषित समझना चाहिए।

४—उसमें एक विशेष प्रकार की रौनक या चमक होना चाहिये जो कि कार्बन डायोक्साईड के मौजूदगी का सूचक है ।

५—उसमें किसी प्रकार के जीवाणु नहीं होने चाहिये ।

अन्य पदार्थों को अपने भीतर विलीन करने का विशेष धर्म पानी में है, और इसी धर्म पर पानी के हितकर तथा अहितकर गुण-धर्म निर्भर रहते हैं । प्रकृति में पीने के पानी का एक मात्र निकास आंतरिक्ष जल ही है और आंतरिक्ष जल के गुण-धर्म तमाम दुनियाँ भर पर एक से ही होते हैं, तथापि भूमिगत जल के गुण-धर्म हर एक स्थान में अलग-अलग हुआ करते हैं । जो लोग कार्यवश निरंतर दूर-दूर देशों में घूमा करते हैं, उन्हें इसका ज्ञान अच्छी तरह से होता है । चरक संहिता में लिखा है ।

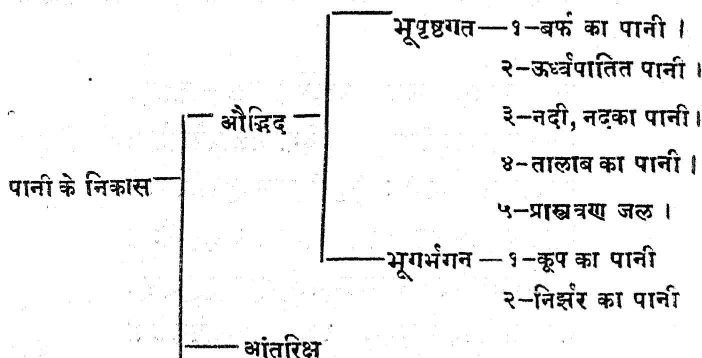
जलमेकविधं सर्वं पतत्यैन्द्रं नभस्तलात् ।
तत्पतत्पतितञ्चैव देशकालावपेक्षते ॥
खात्पतत्सोमवाय्वर्कैः स्पृष्टं कालानुवर्तिभिः ।
शीतोष्ण स्निग्धरुक्षाद्यैर्यथासन्नं महीगुणैः ॥
शीतं शुचि शिवं भ्रष्टं विमलं लघु षड्गुणम् ।
प्रकृत्या दिव्यमुदकं भ्रष्टं पात्रमपेक्षते ॥

वस्तुतः आंतरिक्ष और भूमि का पानी एक ही है, पर उसमें जुदा जुदा पदार्थों के मिल जाने से पानी के गुणों में फेर-फार हो जाता है ॥ पानी खारा, मीठा, हल्का, भारी, मैला, साफ, निर्गंध और गंधवाला इत्यादि जमीन की जात के मुताबिक या अपने आस-पास के पदार्थों के गुणानुसार कितनी ही तरह का होता है । कई स्थानीय पानी के इस्ते-

माल करने से भूख ज्यादा मालूम होने लगती है, पायखाना सफ़ा होता है, शरीर में स्फूर्ति आती है और आमतौर से तबीयत सुधरती है। उसके खिलाफ कई स्थानीय पानी के इस्तेमाल करने से भूख नष्ट हो जाती है, कब्जीयत होती है, शरीर में भारीपन मालूम होता है और तरह तरह के त्वग्रोग पैदा होते हैं।

पानी के निकास

द्विविधं चोदकं प्रोक्तमांतरिक्षं तथौद्भिदम् ॥ हारीत संहिता ॥
कौप सारस ताड़ाग चौंड्य प्रास्रवणौद्भिदम् ।
वापी नदी तोयमिति तत्पुनः स्मृतमष्टधा ॥ वाग्भट ॥



आंतरिक्ष जल

आंतरिक्ष मुदकानाम् ॥ चरक संहिता ॥

समुद्र का पानी सूर्य की गरमी से भाप बनकर आकाश में जाता है। यह भाप फिर असली रूप में आकर बादल या बर्फ बन जाती है। इस

प्रकार से वर्षा-जल की उत्पत्ति होती है। भूमि पर गिरने के बाद आंतरिक्ष जल का कुछ भाग भाप बनकर आकाश में चला जाता है, कुछ भाग वनस्पतियाँ चूस लेती हैं, कुछ भाग भू-पृष्ठ पर बहकर नद और नदियाँ बनाता है, कुछ भाग जमीन के छिद्रों द्वारा उसके भीतर जज्ब होकर कूप और गहरे चश्मों को पानी देता है। यह जज्ब होने की राशि भूमि के प्रकृति पर आश्रित रहती है। केवल चिकनी मिट्टी वाली भूमि में यह बिलकुल जज्ब नहीं होता, चूने के पत्थर वाली भूमि में लगभग फी सदी २० जज्ब होता है, खड़ियावाली भूमि में फी सदी ४० जज्ब होता है, और रेतीली तथा कंकरीली भूमि में यह फी सदी ६० जज्ब हुआ करता है। इस तरह से आंतरिक्ष जल भू-गर्भ-जल और भू-पृष्ठ-जल का उत्पादक है। आंतरिक्ष जल पर पीने के लिये हमेशा निर्भर रहना ठीक नहीं है क्योंकि वर्षा-जल सदा मिल नहीं सकता।

आंतरिक्ष जल के गुण-धर्म—प्रकृति में जो जल मिलता है उसमें वर्षाजल जैसा विशुद्ध, निर्मल और पथ्यकर दूसरा जल नहीं है, इसलिये चरक संहिता में 'आंतरिक्षमुदकानाम्' ऐसा इसका यथार्थ वर्णन किया है। चूना और म्याग्नेशिया के क्षार के अभाव से यह बिलकुल मृदु (Soft) होता है और कपड़े धोना, रसोई बनाना, स्नान करना इत्यादि कामों के लिये बहुत फायदेमंद होता है। इसमें रोगोत्पादक जीवाणु-विशेष करके आंत्रिक सन्निपात, विषूचिका—नहीं पाए जाते। इसमें हवा की राशि बहुत विलयन होने के कारण से यह बहुत जायके दार भी होता है। तथापि इसके बारे में यह ध्यान में रखना चाहिये कि वायुमंडल के विशेष शुद्धा-शुद्धता पर आंतरिक्ष जल की शुद्धाशुद्धता

निर्भर रहती है, क्योंकि हवा में से जमीन पर गिरते वख्त हवाके घटक, कई वायु रूप पदार्थ, दूसरे ठोस अवलंबनस्थ सूक्ष्मांश, धूलि इत्यादि हवा के सहवासी इसमें विलीन हो जाते हैं। सामान्यतः एक लिटर वर्षा जल में (१००० सी० सी०) २५ सी० सी० वायुरूप पदार्थ विद्रुत रहते हैं उसमें ६४ फी सदी नाट्रोजन, ३४ फी सदी आक्सिजन और २ फी सदी कार्बानिक ॲसिड वायु होता है। समुद्र के किनारे नजदीक के शहरों में वर्षा-जल में नमक भी होता है। बड़े-बड़े तिजारती शहरों मे, जहाँ कल-कारखाने बहुत होते हैं, उनसे निकले हुए बहुत जहरीले और गंदे वायुरूप पदार्थ, कज्जली, धूलि, और तरह तरह के सूक्ष्मांश वर्षाजल में विलीन हो जाते हैं। बरसात के शुरू में वायुमंडल इन पदार्थों से भरा रहता है इसलिये उस वख्त वर्षा जल का सेवन नहीं करना चाहिये।

न पिबेत् अनार्तवं च यद्दिव्यमार्तवं प्रथमं च यत्।
लूतादितंतुविण्मूत्रविषसंश्लेषदूषितम् ॥ वाग्भट ॥

यदि वर्षा-जल साक्षात् अंतरिक्ष से इकट्ठा करना हो तो उपर्युक्त बातों पर ध्यान रखकर स्वच्छ बर्तन में इकट्ठा करना चाहिये।

ऐंद्रमंबु सुपात्रस्थमविपन्नं सदा पिबेत् ॥ वाग्भट ॥

वर्षाजल इकट्ठा करने की रीति—सामान्यतः वर्षाजल घरों के छतों से इकट्ठा करते हैं और छोटे २ मर्तबानों तथा हौजों में भरकर रख देते हैं। यह जल घास-पात तथा पक्षियों के मल-मूत्र, धूलि इत्यादि से दूषित रहता है इसलिये शुरू का वर्षा-जल इकट्ठा नहीं करना चाहिये। इस जल को इकट्ठा करने के लिये राबर्ट या गिब का वर्षाजल विभाजक

(Robert's or Gibb's Rain water Separator) का प्रयोग किया जाय तो यह काम आप-से-आप हो जाता है। यह यंत्र इस तरह से बनाया गया है कि शुरू के दूषित जल को अंदर नहीं आने देता, परंतु थोड़ी देर के बाद इसका ढकना ऊपर उठ जाता है और शेष शुद्ध पानी को मर्तबान में या उस नाली में जो कि पानी के लिये बनायी गयी है जाने देता है। सर विलीअम म्याक् ग्रीगर ने (Sir William Mac Gregor) एक ऐसा प्रबन्ध किया है जिससे कि शुद्ध पानी जमा किया जा सकता है तथा उसे मच्छड़ों से तथा अन्य छोटे-छोटे कीटों से सुरक्षित रखा जा सकता है।

एक छत से कितना पानी इकट्ठा किया जा सकता है यह जानने का तरीका यह है।

छत का क्षेत्रफल जितना वर्गफुट हो उसे एक वर्ष में जितने इंच वर्षा पड़ी हो उसके आधे से गुणा करो। जो गुणनफल होगा वह एक वर्ष में प्राप्त पानी की राशि ग्यालन में बतायेगा। छत का क्षेत्र-फल निकालने में छत का ढालू भाग नहीं लेना चाहिये। केवल वही चपटा भाग लेना चाहिये जो कि वास्तव में मकान को ढकता है।

भूमि पर से इकट्ठा करना—यदि वर्षाजल को भूमि पर से इकट्ठा करना हो तो उस स्थान के तली पर सीमेंट या अन्य अप्रवेश्य पदार्थ की तह बिछानी चाहिए और इसे नल के द्वारा जमीन के अंदर के हौजों में ले जाना चाहिए। इस भूमि को, जिसे बंधभूमि (Catchment area) कहते हैं, बहुत साफ रखना चाहिए और उसके चारों ओर घनी बाड़ बनवाना चाहिए ताकि पशु इसके पास आकर गंदगी न

कर सकें। इस बंधभूमि से हौज तक जानेवाली नलिका भी हमेशा साफ रखना चाहिये।

वर्षाजल का मापन—वर्षाजल जो भूमि पर गिरता है उसका मापन वर्षाजल मापक (Rain Gauge) से किया जाता है। यह राशि इंच के स्वरूप में बताई जाती है। एक इंच वर्षा का जल प्रति एकड़ १०१ ग्यालन या वर्गगज ४$\frac{३}{४}$ ग्यालन होता है।

मृदु और कठिन जल (Hard and soft water)

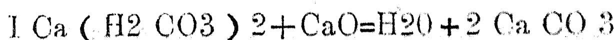
प्रकृति में जो जल होता है उसमें, सिवा आंतरिक्ष जल के, किसी भी प्रकार का जल मृदु नहीं होता, कठिन रहता है। यह कठिनता क्यालसिअम और म्याग्नेसिअम क्षार पानी में होने के कारण होती है। ये क्षार जमीन के स्वाभाविक सहवासी होने के कारण भूमिगत जल में कमो-बेश तादाद में हुआ करते हैं और पानी कठिन बनाते हैं। यह कठिनता स्थायी और अस्थायी रूप में दो प्रकार की होती हैं। जब पानी में क्यालसिअम और म्याग्नेसिअम के बायकार्बोनेट् होते हैं तो अस्थायी कठिनता (Temperary hardness) होती है और जब क्यालसिअम और म्याग्नेसिअम के सल्फेट और क्लोराईड (Sulphate and chloride) होते हैं तब स्थायी (Permanant) कठिनता होती है। कठिन पानी कपड़े धोने के लिये तथा रसोई बनाने के लिए ठीक नहीं होता क्योंकि कपड़े पर बहुत साबुन लगाने से झाग पैदा नहीं होता और साबुन फजूल खर्च हो जाता है। माँस, दाल इत्यादि पदार्थ कठिन पानी में सख्त हो जाते हैं। इसलिये पानी यदि ज्यादा कठिन हो तो उसकी कठिनता निकालना जरूरी है।

कठिनता निकालने की रीतियाँ—उत्क्वथन—अस्थायी कठिन पानी उबालने से CO_2 निकल जाता है और कार्बोनेट नीचे तली में बैठकर, पानी मृदु होता है।



$$Ca(HCO_3)_2 + Heat = H_2O + CO_2 + CaCO_3$$

द्वितीय रीति—(Clark's Process)—इस विधि में पानी के साथ चूना या चूने का पानी (Slaked lime) मिलाया जाता है जिसमें विद्राव्य खटिक के क्षार अविद्राव्य होकर तली में बैठ जाते हैं।



$$\text{I } Ca(H_2CO_3)_2 + CaO = H_2O + 2\,CaCO_3$$



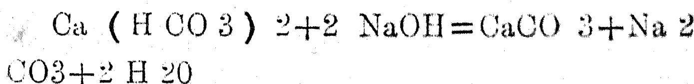
$$\text{II } Ca(H_2CO_3)_2 + Ca(OH)_2 = 2H_2O + 2CaCO_3$$

तृतीय रीति—स्थायी कठिनता निकालने के लिये पानी के साथ सोडाकार्बोनेट मिलाने की जरूरत होती है।

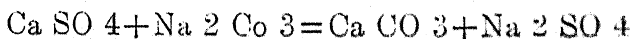


$$CaSO_4 + Na_2CO_3 = CaCO_3 + Na_2SO_4$$

चतुर्थ रीति—जब स्थायी और अस्थायी जड़ता दोनों साथ साथ रहती हैं तो पानी के साथ सोडिअम हाड्रोक्साईड मिलाना चाहिये।



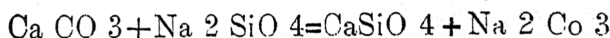
$$Ca(HCO_3)_2 + 2\,NaOH = CaCO_3 + Na_2CO_3 + 2\,H_2O$$



$$CaSO_4 + Na_2Co_3 = CaCO_3 + Na_2SO_4$$

पंचम रीति—Permutit System—पानी मृदु बनवाने के लिये यह बिलकुल नयी रीति है जो कि घरेलू कामों के लिये बहुत उपयोगी और फायदेमंद है। यह विधि इस तत्व पर निर्भर होती है कि जब कठिन पानी सिलिकेट की तह से (Stratum of certain Silicates) निथारा जाय तो कार्बोनेट और सिलीकेट में अदला-बदल होकर क्षार

सिअम सिलिकेट बन जाता है और यह अनघुल होने के कारण निथारक के ऊपर रह जाता है और पानी में सोडिअम कार्बोनेट आता है।



$$Ca\ CO\ 3 + Na\ 2\ SiO\ 4 = CaSiO\ 4 + Na\ 2\ Co\ 3$$

इसमें जो सिलिकेट का इस्तेमाल होता है वह कृत्रिम तयार किया जाता है और बजार में 'परम्यूटाइट' नाम से मिलता है।

भूपृष्ठगत जल

बर्फ—बर्फ का पानी सामान्यतया शुद्ध रहता है परंतु यदि बर्फ खराब पानी से तयार हुआ हो तो ऐसा बर्फ खाने से धोका होता है जो कि खराब पानी पीने से होता है।

तिर्यक् पातित जल Distilled water—यह सामान्यतया समुद्र के पानी से तयार किया जाता है और इसका उपयोग जहाजों पर विशेष होता है जहाँ मीठा पानी मिलना मुश्किल है। यह पानी स्वाद-रहित होने के कारण से पीने के पहले हवा युक्त (aerated) करके पीना चाहिये। सीसा, जसद, ताम्र धातुओं के बर्तनों में इसका संचय नहीं करना चाहिये।

नदी—नदी का जल भू-पृष्ठ-जल और स्रोत जल का मिश्रण है जो भाँति-भाँति के स्तरों और चट्टानों से होकर बहता है। भारतवर्ष में बहुत से देहातों में पीने के लिये नदी-जल का ही उपयोग किया जाता है। यदि नदी में पानी बहुत हो और पानी का बहाव ठीक हो तो पीने के लिये नदी का पानी योग्य होता है। क्योंकि सदा बहते हुए पानी में कोई खराब वस्तु एक जगह स्थित नहीं रह सकती। नदी के जल में

सूरज की रोशनी और हवा भी काफी पड़ती है। इस तरह से नदी का पानी प्रकृति से शुद्ध होता है।

नदी वेगेन शुद्धयति। मनुस्मृति।

परंतु नदी का पानी खराब होने का भी भय बहुत रहता है।

१—वर्षा ऋतु में नदी के पानी में चारों ओर की गंदगी जल के साथ बहकर मिल जाती है। इसलिये वर्षा के मौसिम में नदी का पानी पीने योग्य नहीं होता है।

वर्षानादेयं जलानाम् (अपथ्यकारकम्)
वसुधाकीटसर्पाखुमलसंदूषितोदकाः।
वर्षाजल वहा नद्यः सर्व दोष समीरणाः॥ चरक॥

२—बहुत से शहरों के परनाले नदी में छोड़ देते हैं जिससे नदी का पानी अत्यंत गंदा हो जाता है और बारहों मास अपेय बन जाता है।

३—नदी के किनारे पर बसनेवाले गाँव में जिस समय हैजा, आंत्रिक, सन्निपात, (Typhoid Fever) इत्यादि रोगों की महामारी जारी होती है तो अनपढ़ आदमी रोगी के गंदे कपड़े तथा खराब चीजें नदी में लाकर छोड़ देते हैं तथा धोते हैं। ऐसा करने से संक्रामक रोग नदी के पानी पीनेवाले दूसरे लोगों में फैलते हैं।

४—किसान लोग गाय, बैल, भैंस इत्यादि के झुंड के झुण्ड नदी में लाकर धोते हैं।

५—सैंकड़ों आदमी सुबह-शाम नदी के किनारे पायखाना, पेशाब आदि करते हैं। जिस समय नदी का पानी बढ़ता है उस समय ये सब गंदे पदार्थ नदी में जाकर मिलते हैं।

६—नदी के किनारे पर मुर्दे जलाते तथा गाड़ते हैं। कभी-कभी जानवरों की लाश नदी में पड़कर उसी में गल-पच जाती है।

७—कहीं-कहीं कल-कारखानों का खराब पानी नदी में मिला देते हैं।

८—झाड़ियों में से होकर बहनेवाले नदियों का पानी वनस्पतिज अशुद्धियों से भरा रहता है।

९—यदि नदी किसी खाद वाले जमीन में से बहती हो तो खाद की गंदगी भी उसमें मिली रहती है।

इन सब बातों को देखकर यही कहना पड़ता है कि नदी का पानी पीना हो तो बहुत सावधानता से पीना चाहिये। किनारे के नजदीक का नहीं पीना चाहिये। नदी के बीचोबीच किनारे से २५–३० फुट दूरी पर नदी के पात्र में जाकर वहाँ का पानी पीना चाहिये, क्योंकि उथले स्थान से गहरे स्थान का पानी कहीं अच्छा होता है।

प्रास्रवण जल—(Upland Surface water)—यह वर्षा-जल है जो कि भूमि के अंदर जज्ब न होकर भू-पृष्ठ पर नदियों के मुख के नजदीक पहाड़ों के ऊपर इकट्ठा हो जाता है। ये प्राकृतिक जल संचय होते हैं और भारत में बहुत स्थानों पर इनका पानी बर्ता जाता है। यह पानी अक्सर पहाड़ी और निर्जन प्रदेशों से आकर इकट्ठा होता है और सामान्यतया 'आंतरिक्षानुकारी' रहता है। यह वर्षा-जल जैसा मृदु होकर इसमें नायट्राईट और नायट्रेट इत्यादि क्षार भी ज्यादा नहीं होते। इसमें वर्षा-जल की अपेक्षा वनस्पतिज सेंद्रिय पदार्थ ज्यादा हुआ करते हैं। यदि पहाड़ों के माथे पर पीट (Peat) नामक मिट्टी हो तो यह भी पानी में मिल जाती है और हद से ज्यादा तादाद में हो तो अतिसार

पैदा कर देती है। यदि पीट नामक द्रव्य न हो तो यह पानी पीने के लिये काफी विशुद्ध रहता है। आधुनिक खोज से यह साबित हुआ है कि पीट में अम्लजनक (Acid Producing) कीटाणु हुआ करते हैं, जिससे इस पानी की प्रति-क्रिया अम्ल (Acid reaction) होती है। ऐसा पानी जब सीसे की नलिका द्वारा शहर में पहुँचाया जाता है तो सीसे को घोलकर सीस-विष (Plumbism) का रोग यह पानी पीनेवाले लोगों में पैदा कर देता है।

तालाब —ये जमीन में लंबे-चौड़े गड्ढे खोदकर या किसी तंग घाटी में एक तरफ पुश्ताबंदी करके तयार किये जाते हैं और उनमें बरसात का पानी चारों तरफ से आकर इकट्ठा होता है। इन्हीं का नाम तालाब या तलैया है। भारतवर्ष के बहुत से देहातों में इनका ही पानी पीने के लिये बर्ता जाता है। कितने ही तालाब सोते वाले होते हैं अर्थात् इनमें झरना आया करता है जिससे उनमें सदा-सर्वदा पानी लबालब भरा रहता है। कितने ही केवल बरसात के पानी से भर जाते हैं और गर्मी के दिनों में अक्सर सूख जाया करते हैं। बरसात का पानी आस-पास की जगहों में से आकर तालाब में इकट्टा होता है और थोड़े ही दिनों में निर्मल हो जाता है। यदि इसके पानी में किसी तरह की गंदगी न किया जाय तो पानी पीने के लिये उपयोगी हो सकता है। बहुत से लोग स्वास्थ्य-रक्षा के विषय में इतने अज्ञान होते हैं कि जिस स्थान का पानी वे पीने के लिये इस्तेमाल करते हैं उसी स्थान पर और-और मलिनताएँ पैदा कर पानी खराब कर डालते हैं। यदि तालाब का पानी पीना हो तो नीचे लिखी बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

१—तालाब अच्छे जमीन में खुदवाना चाहिये और उसके आसपास खराब जमीन (Made soil) तथा गंदे पानी का संचय नहीं होना चाहिये ।

२—तालाब के ढालू किनारे पर घास लगवाना चाहिये तथा उसके चारों ओर ऐसा प्रबंध होना चाहिये कि तालाब तथा उसके बंध भूमि (Catch water area) के सिवा दूसरे किसी स्थान का पानी उस के भीतर न आ सके ।

३—उसके चारों ओर घनी बाड़ लगवानी चाहिये ताकि जानवर उसमें जाकर गंदगी न कर सकें ।

४—तालाब के नजदीक पेड़ नहीं होना चाहिये, कुछ दूरी पर होना चाहिये ।

५—उसमें छोटे प्रकार की मछलीयाँ होनी चाहिये जो कि मच्छड़ों के अंडे (Larvae) तथा अन्य सेंद्रिय अशुद्धियां खाकर पानी शुद्ध रखती हैं ।

६—मछली पकड़ना तथा नाव चलाने की सख्त मुमानियत होना चाहिए ।

७—उसके घाट पर तथा पानी में नहाना, कपड़े धोना, बासन मांजना, मल-मूत्र त्याग करना, कूड़ा-कर्कट इत्यादि फेकना नहीं चाहिये ।

८—उसमें काई, सिवार इत्यादि जो समय-समय पर तय्यार हो जाते हैं उसको निकलवा देना चाहिये ।

९—पानी शुद्ध करने के लिये किसी नाव के एक किनारे पर रस्सी बांधकर उसके द्वारा तुत्थ की (Copper Sulphate) एक पोटली

को पानी में लटकाकर समय-समय पर उसके पानी में चलाना चाहिये।

१०—प्रति पांच वर्ष तालाब को निर्जल करके बरसात के पहले उसकी सफाई करना चाहिये।

भूगर्भगत जल

यह एक आंतरिक्ष जल का ही भाग है जो कि जमीन के छिद्रे (Porous) भाग को लांघकर अप्रवेश्यस्तर (Impervious Layer) तक पहुंच गया है और निर्झर अथवा कूप की शक्ल में पानी का निकास बना है। भूगर्भगत जल स्वाभाविक शुद्ध रहता है क्योंकि अप्रवेश्य स्तर तक पहुंचते-पहुंचते स्वयं ही उसका नितरण हो जाता है। तथापि उसमें CO_2 की राशि ज्यादा होती है और अम्लयुक्त होने के कारण भूमिगत खनिज पदार्थों को घोल लेता है, इसलिये यह पानी ज्यादा कठिन रहता है।

निर्झर—Springs—झरने का पानी भूमिगत जल होता है जो कि अनुकूल परिस्थिति पाकर भूमि से बाहर निकलता है। निर्झर प्रायः पहाड़ों के आस-पास के तराई में, घाटियों में, दरिया, समुद्र इत्यादिक के मध्य-भूमि में पाये जाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं, एक भू-पृष्ट निर्झर और दूसरा भू-गर्भ निर्झर।

भू-पृष्ठ निर्झर—Land springs—ये उस पानी से बनते हैं जो कि पृथ्वी के अप्रवेश्य स्तर के ऊपर ऊपर फैली हुई रेतीली अथवा कंकड़ीली स्तर में संचित हुवा रहता है। फलतः ये भूमिगत जल संचयका उद्गम है। ये विश्वसनीय नहीं होते, क्योंकि गरमी के मौसिम में बंद हो जाते हैं और बरसात होने के बाद फिर शुरू हो जाते हैं।

भू-गर्भ निर्झर—Deep springs—जो जल भू-गर्भ में रहता है वह जोर लगाकर फूटने का प्रयत्न करता है। इसी जोर के ये परिणाम हैं। ये जमीन के खड़िया, रेतीली, पत्थरवाले तहोंसे निकलते हैं। इनका पानी स्वच्छ और चमकीला होता है, और फूटने के समय मार्ग में ही छना जाने के कारण इसमें मलिनता का भी डर नहीं होता।

ये प्राय: स्थायी होते हैं। इनका भी पानी भू-पृष्ठ के पानी से तथा मल-मूत्र युक्त दूषित जल से खराब न होने के लिये इनके चारों ओर एक छोटी मुंडेर बनवाना चाहिये जिससे भू-पृष्ठ का जल दूर से बहकर चला जावे। इनके आस-पास घास-पात नहीं होना चाहिये परंतु थोड़ी दूर पर घास अवश्य होना चाहिये ताकि पानी की रक्षा धूलि से हो सके। इनके पास जानवरों को नहीं आने देना चाहिये तथा टट्टियां बनवाना चाहिये।

कूप—Well—गहराई और आकार के अनुसार कूप के तीन प्रकार होते हैं :—

१—उथला कूप।

२—गहरा कूप।

३—आर्टिक्षन कूप (Artesien well)।

उथला कूप—जिस कुँए की गहराई ५० फुट तक होती है और जिसकी तली जमीन के अप्रवेश्यस्तर (Impervious layer) के ऊपर ऊपर होती है उस कूएँ को उथला कुआँ कहते हैं। इसमें भू-पृष्ठ के नजदीक के जमीन का (Subsoil water) पानी आया करता है इसलिये उथले कूएँ का पानी पीने के लिये ठीक नहीं होता। जहां तक

हो सके उथले कुएँ का पानी नहीं पीना चाहिये और जब पीना हो नीचे बताई बातों पर ध्यान करके पीना चाहिये।

१—कुएँ की भीतर को दीवाल पक्की इटों को बनवाकर फिर उसके ऊपर सीमेंट या दूसरे अप्रवेश्य पदार्थ का पलस्तर करवाना चाहिये।

२—कुएँ के चारों ओर ५-६ फुट तक सीमेंट जैसे पदार्थों का पक्का चबूतरा बनवाकर उससे खराब पानी का नल नितरणशंकु Cone of filtration ६२ पान) के पार छोड़ना चाहिये।

३—कुएँ के मुख पर एक एक फुट ऊँचाई की चहार दीवारी करना चाहिये ताकि खराब पानी के छींटे भीतर न जासकें।

४—कुएँ का एक सछिद्र ढक्कन होना चाहिये।

५—कुएँ के आस-पास ५० फुट के दूरी में कोई टट्टी-पायखाना या खराब पानी का पोखरा नहीं होना चाहिये।

६—कुएँ की तली में एक कंकड का तह और उसके ऊपर बालू का तह बिछाना चाहिये ताकि नीचे से आनेवाला पानी उस तह में से होकर आ जाय।

गहरा कूप—Deep well—**इस कुएँ की तली ज़मीन के अप्रवेश्य स्तर के निचले जलाधार स्तर में** (Water bearing strata) **होती है गहरे कुएँ का पानी उथले कुएँ की अपेक्षा अधिक निर्मल और स्वच्छ होता है और उसमें पानी खराब होने का डर बहुत नहीं होता। इनमें सामान्य तथा सेंद्रिय अशुद्धियां बहुत कम होती है।**

आर्टिसन कूप—**इनका प्रथम आविष्कार फ्रान्स के आर्टोइस** Artois) **प्रांत में हुआ। इनके बनाने की विधि यह है कि १½ से २**

इंच व्यासवाली लोहे की लंबी नलियां जो कि पेचों द्वारा एक दूसरे के साथ जुटी रहती हैं, जमीन में यंत्र की सहायता से गाड़ी जाती हैं। सब से नीचे की नली का निचला सिरा नुकीला और सछिद्र होता है। इसे तब तक जमीन में गाड़ते हैं जब तक कि पानी की अभीष्ट राशि प्राप्त होती है। इसके बाद ऊपर की नलिका के साथ पंप लगाकर पानी निकालते हैं। शुरू में खराब पानी आता है परंतु होते होते साफ पानी आने लगता है। ये कुएँ खड़ियाली, कंकड़ीली और नरम जमीन में तथा नदी के बालुकामय प्रदेश में बहुत फायदे मंद होते हैं। मटीली (Cley) और रेणुकामय (Fine sand) प्रदेशों में ये अच्छी तरह से काम नहीं देते, क्योंकि उनके निचले छिद्र चिकनी मिट्टी से तथा बारीक बालू से बंद हो जाते हैं। जब थोड़े समय के लिये तथा थोड़े पानी की जरूरत होती है, यथा मेलों में, युद्ध के समय सैनिकों के लिये, तब ये कूप बहुत उपयोगी होते हैं। इनका दूसरा फायदा यह है कि ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाए जा सकते हैं। इनका पानी बहुत शुद्ध रहता है क्योंकि बहुत गहरे होने के कारण भू-पृष्ठ का जल इनके जल को दूषित नहीं कर सकता।

नितरण शंकू—Cone of filtration—सामान्यतया कूप की जितनी गहराई होती है उसके चौगुनी दूरी से या इससे भी कुछ अधिक दूरी से कूप में पानी आ सकता है। इस क्षेत्र को नितरण शंकू (Cone of filtration) कहते हैं। यदि किसी कूप की गहराई ५० फुट हो तो उसके चारों ओर २०० फुट दूरी में कोई गंदे पानी का नाला, पोखरा या संचय हो तो इससे कुएँ में पानी आ सकता है। इसलिये

कुएँ के नितरण शंकू के क्षेत्र में चौबच्चा, नाला, पोखरा, पायखाना इत्यादि नहीं होना चाहिये।

कूप के पानी को दूषित करनेवाले कारण—

१—नितरण शंकू क्षेत्र में चौबच्चा, नाला, मोरी, पायखाना, इत्यादिक का अस्तित्व।

२—नदी का साक्षात् संबंध।

३—कुएँ के नजदीक मुर्दा गाड़ने की भूमि या श्मशान।

४—चूहों के बिल।

५—वृक्षों का कूप के नजदीक अस्तित्व।

६—कुएँ के नजदीक की जमीन के दरार।

कूप का दूषण जानने का उपाय—कुएँ में किसी खराब पानी के संचय से पानी आता है या नहीं यह जानने के लिये संदिग्ध संचय में फोरोसिन (Fluorescin) का आधा पौंड पानी में घोल कर डाल दिया करो। यदि उस संचय का और कुएँ का कुछ भी संबंध हो तो थोड़े ही समय में फ्लोरोसिन कुएँ के पानी में पाया जायगा। यह पदार्थ सूर्य-प्रकाश में हरा या नीला-सा रंग देता है। यह परीक्षा इतनी सूक्ष्मता-दर्शक है कि पानी के १० करोड़ भाग में यदि इसका १ भाग भी हो तो भी इसका पता लग सकता है। लेकिन इसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि फ्लोरोसिन अम्ल-जल के साथ कोई रंग नहीं देता, इसलिये यदि कुएँ के जल की प्रति क्रिया अम्ल हो तो उसमें पोट्यासिअम हाइड्रोक्साईड डालना चाहिये। फ्लोरोसिन के सिवा नमक (Sodium chloride), नोसादर (Ammonium chloride),

प्याराफिन तेल, लिथिया के क्षार (Lithia Salts) और ब्यासिलस प्रॉडिजिओसस का इमल्शन (Emulsion of bacillus Prodigiosus) इनका भी प्रयोग किया जाता है। जमीन से कोई छेद सीधा कुएँ में आता है या नहीं यह जानने के लिये उस स्थान पर मिट्टी का तेल डालने से पहचान हो सकती है।

कूप की परीक्षा—कुएँ की परीक्षा में निम्न-लिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

१—कुएँ के चारों ओर की सफाई की दृष्टि से परिस्थति तथा दूषित स्थानों की कुएँ से दूरी।

२—कुएँ की भीतरी दीवाल की स्थिति।

३—कुएँ की गहराई।

४—कुएँ के पानी की गहराई।

५—जिस भूमि में कुआँ खोदा गया है उसकी प्रकृति।

६—कुएँ के बाहर जो खराब पानी पड़ता है उसके निकाल का प्रबंध।

७—किस काम के लिये कुएँ का उपयोग किया जाता है।

८—कुएँ का उपयोग करनेवाले लोगों की रहन-सहन।

९—पंप करने का प्रभाव।

भारतवर्ष में पीने के लिये कुएँ के पानी का प्रयोग बहुत से स्थानों में किया जाता है। इसलिये उत्कृष्ट कूप (Ideal well) कैसा होना चाहिये इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

आदर्श कूप कैसा होना चाहिये

१—जिस भूमि में कुआँ खोदना हो उस भूमि की प्रकृति उत्तम होना चाहिये। पानी के गुणों का सबसे बड़ा आधार जमीन की जात और जमीन के गुणों पर मुनहसिर होता है। यदि कुंए की जमीन खराब हो तो कुंए का जल भी खराब हुआ करता है यदि खारी हो तो पानी भी खारा होता है। इसलिये प्रशस्त-भूमि में कूप होना चाहिये।

२—जहाँ तक हो सके कुआँ मैदान में ही होना चाहिये। ताकि उसमें काफी शुद्ध हवा और सूरज की रोशनी पड़ सके।

३—कुंए के नजदीक पेड़-पालव नहीं होना चाहिए। यदि हो तो तोड़ डालना चाहिए, क्योंकि पेड़ के पत्ते सूख कर उसमें गिर पड़ते हैं और सड़कर पानी को गंदा कर डालते हैं। दूसरे, पेड़ की जड़ कुंए में जाकर कुंए के दीवाल को फाड़ती हैं और इसी तरह से गंदा पानी कुंए में जाने की बहुत संभावना होती है। तीसरे, पेड़ के ऊपर पक्षी बैठते हैं और उनकी बीट पानी में गिरा करती है। चौथे, पेड़ की छाया से कुंए में सूर्य की रोशनी अच्छी तरह से नहीं पड़ती। इन सब कारणों से कुँए के नजदीक वृक्ष नहीं होना चाहिए।

४—मनुष्य बस्ती से कुआँ कम से कम २५० फुट दूरी पर होना चाहिए तथा उसके आसपास परनाला, मोरी, अस्तबल, पेशाबखाना, पायखाना इत्यादि गंदे पानी का संचय नहीं होना चाहिए। क्योंकि इनका गंदा पानी धँसकर कुँए में जाने की संभावना होती है। संक्षेप में, कुँए की गहराई के चौगुना पंचगुना फासले में जल को दूषित करने का कोई भी निकास नहीं होना चाहिए।

५–कुँए के आसपास की जमीन ऐसी बनवाना चाहिए कि बरसात में आसपास का पानी बह कर उसमें न जा सके।

६—कुआँ गहरे प्रकार का होकर पक्का बँधवाना चाहिए। इसके भीतर की दीवाल भूमिगत अप्रवेश्य स्तर तक सीमेंट की होना चाहिए ताकि भू पृष्ट गत जल (Subsoil water) उसमें न आ सके। कच्चे कुँए के दराजों और गड्ढों में कबूतर आदि घर बनाते हैं और कुँए के जल में बीट किया करते हैं।

७—पृष्ठ-भाग के ऊपर कुँए के चारों ओर २ फुट ऊँचाई की चहार-दीवारी या मुँडेर बनवाना चाहिये, ताकि छींटे अंदर न जा सकें।

८—कुँए के चारों ओर ५-६ फुट तक सीमेंट का पक्का चबूतरा बन-वाना चाहिये और वहाँ का खराब पानी पक्की नलिका द्वारा दूर छोड़ देना चाहिये।

९—कुँए से पानी निकलवाने के लिये पंप या एक डोलची और डोर सदा के लिये रखना चाहिये। और जिस किसी को जल लेना हो तो वह उक्त बरतन से पानी निकलवाकर अपने घड़े में लेवे।

१०—कुँए के ऊपर टिन आदि का एक सछिद्र छाजन होना चाहिये, ताकि उसमें हवा से उड़कर धूल आदि न गिरा करे, और न पेड़ों की पत्तियाँ गिरकर सड़े। जिस वक्त कुआँ उपयोग में नहीं होता तथा रात के समय यह मुँह के ऊपर डाल देना चाहिये।

११—कुँए के नजदीक स्नान करना, कपड़े धोना, बासन माँजना इत्यादि नहीं करने देना चाहिये। नहीं तो स्नान करनेवाले के शरीर

तथा कपड़ों की गंदगी पानी के छींटों के साथ कुँए में जाकर तमाम पानी को दूषित कर देगी।

१२—प्रतिसाल गर्मी के मौसम के आखिर में कुँए की कींच निकलवाकर कुँए को साफ रखना चाहिये।

भिन्न-भिन्न निकास के पानी के तुलनात्मक गुणदोष और रुचि

स्वास्थ की दृष्टि	पानी का निकास	रुचि
१ पथ्यकर	१ निर्झर का पानी २ गहरे कुँए का पानी	अत्यंत रुचिकर
२ संशयास्पद	३ प्रास्रवणजल ४ संचयित आंतरिक्ष जल	मध्यम रुचिकर
३ हानिकारक	५ खादवाली जमीन से बहता पानी ६ जिसमें परनाले छोड़े गये हैं ऐसी नदी का पानी ७ उथले कुँए का पानी	साधारण रुचिकर

———

चतुर्थ अध्याय

जल विशुद्धिकरण

विण्मूत्र तृण नीलिका विषयुतं तप्तं घनं फेनिलं ।
दंतग्राह्यमनार्तवं हि सजलं दुर्गंधि शैवालजम् ॥
नानाजीवविमिश्रितं गुरुतरं पर्णौघपंकाविलं ।
चंद्रार्कांशु सुगोपितं नच पिबेन्नीरं सदा दोषलम् ॥हा० सं०

जीव-रक्षा करने के लिये पानी आवश्यक वस्तु होने पर भी यदि विशुद्धावस्था में न मिले तो वह तरह तरह का बीमारियाँ पैदा कर जीवन की रक्षा करने के बजाय जीवन का अकाल नाश करने में सहाय-भूत होता है। केवल विशुद्ध जल की ही 'जीवन' संज्ञा हो सकती है। बहुत से लोगों को यह भी पता नहीं है कि पानीय-जल द्वारा तरह तरह के रोग उत्पन्न हो जाया करते हैं, और इसी अज्ञानता के कारण ये लोग पानी में और और मलिनताएँ पैदाकर वहा पानी पीने में लाते हैं। परंतु सच तो यह है कि अधिकांश बड़े बड़े रोग पीने के पानी द्वारा ही उत्पन्न हुआ करते हैं। इसलिये पानी की कौन-कौन सी अशुद्धियाँ होती हैं, उनसे कौन-कान से रोग खासकर होते हैं और खराब पानी से बचने के लिये क्या क्या प्रवंध करना चाहिये इसका ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिये निहायत जरूरी है।

पानी की अशुद्धियाँ और उनसे होनेवाले रोग

......जांगमौद्भिद पार्थिवम् ।
स्नानेन त्वग्भवान् रोगान् कंडू कुष्ट विसर्प कृत् ।

पानेन कफगुल्मानां कृमीणां वरसंभवान् ।
करोति विविधान् रोगान्.........हारीत संहिता ॥

पानी की अशुद्धियां तीन प्रकार की होती है:—

१—वनस्पतिज या औद्भिद ।

२—खनिज या पार्थिव ।

३—प्राणिज या जंगम ।

१—प्रथम प्रकार की अशुद्धि वनस्पतियों के सूखे पत्ते पानी में गिरने तथा सूखे पेड़ पानी में गिरने से होती है। ये पदार्थ पानी में सड़ने लगते हैं। इससे पानी का रंग बदलकर बदबू आने लगती है। काई, सिवार इत्यादि भी अधिक मात्रा में हो तो ये भी स्वास्थ्य के लिये हानि कारक होते हैं। वनस्पति के अशुद्धता युक्त पानी पीने से दस्त, मरोड़, अतिसार इत्यादि विकार पैदा होते हैं।

२—पार्थिव अशुद्धता जिन-जिन स्थानों में से पानी आता है या जिस स्थान से कुवाँ, तलाव इत्यादि खोदा होता है उस स्थानीय भूमि के अंतर्गत प्रकृति पर निर्भर रहती है और प्रति अशुद्धता उसका असर भी भिन्न-भिन्न होता है। पार्थिव अशुद्धता से पानी के रंग-रूप में विशेष फर्क नहीं होता तथापि उसकी रुचि बढ़ जाती है।

पानी में यदि लोहे का अंश अधिक हो तो अग्निमांद्य पैदा होता है, यदि जसद हो तो सख्त कब्जीयत होती है, यदि सीसा हो तो सीस विष से तरह-तरह की शिकायतें पैदा होती हैं, यदि अभ्रक हो तो अतिसार पैदा होता है।

गलगंड Goitre)—यह रोग खटिक और डोलोमाईट (Lime-

stone and dolomitie rocks) चट्टानों में से होकर बहते पानी पीने से पैदा होता है, ऐसी शास्त्रज्ञों की राय थी, तथापि हाल में मेजर म्याक् क्यारिसन (Mc Carrison) नामक शास्त्रज्ञ ने बतलाया है कि यह रोग शरीर में जीवाणु समा जाने से होता है। यह जीवाणु जमीन का सहवासी है और उस जमीन में से होकर बहते पानी में मिलकर मनुष्यों के पेट में प्रवेश करता है और पश्चात् गल-ग्रंथी की वृद्धि कर देता है।

सीस विष Plumbism—बड़े बड़े शहरों में जल संचायक से मोहल्ले में पानी पहुँचाने के लिये सीसक की नलिकाओं का प्रयोग किया जाता है। सीसक के जल्दी मुड़ने के कारण उसकी नलिकाएँ बैठाने में आसानी होती है तथापि जहाँ तक हो सके जल-संचय तथा बँटवारा करने में सीसा का उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि बहुत प्रकार के पानी सीसे को कमो-बेश तादाद में घोल लेते हैं। सीसे को घोलनेवाले पानी के प्रकार ये हैं—

१—सबसे विशुद्ध जल तथा जिसमें आक्सिजन की मात्रा बहुत होती है, ऐसा जल यथा आंतरिक्ष और प्रास्रवण जल।

२—जिसमें नाट्राईट, नाट्रेट, क्लोराईड क्षार होते हैं ऐसा जल।

३—जिसमें ह्यूमिक असिड (Humic Acid) होता है ऐसा जल।

४—तिर्यंकपातित पानी (Distilled water)।

५—नदी का मैला कीचड़युक्त पानी।

पानी के एक ग्यालन में यदि $\frac{१}{१०}$ ग्रेन भी हो तो पानी पीने के लिये हानिकारक समझना चाहिये। सीस का विष संचायी (Accumila-

tive) स्वरूप का है, इसलिये यदि पानी में $\frac{१}{२०}$ ग्रेन सीसा हो ता भी लगातार ऐसा पानी पीने से सीसक रोग हो सकता है। इस रोग के प्रधान लक्षण अजीर्ण, अग्निमांद्य, मलावरोध, मुँह का जायका मीठा, मसूड़े पर नीली लकीर, आंत्रशूल, टांगों के पेशियों में ऐंठन, हाथ के प्रसारण पेशी समूह का घात होने के कारण कलाई की शक्तिनाश, (wrist drop), जोड़ों में दर्द, अश्मरी, वृक्क हृदय मस्तिष्क के उपद्रव, आँखों में रोशनी की कमी और अंत में अंधता।

३—पानी में जो प्राणिज अशुद्धता होती है वह सब से महत्वपूर्ण तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक और मारात्मक होती है, और बड़े बड़े जानपदिक रोग इस अशुद्धता से ही पैदा होते हैं। यह अशुद्धता विशेष करके मल-मूत्र का पानी के साथ संसर्ग होने से पैदा होती है। इस अशुद्धता से होनेवाले प्रधान प्रधान रोग निम्नलिखित हैं।

विषूचिका —पानी से फैलनेवाले रोगों में यह प्रधान रोग है और इस रोग का फैलाव होने में खराब पानी का विशेष भाग है। हैजे का जहर मनुष्य के शरीर में अधिकतर जल के साथ ही जाता है। इस रोग से पीड़ित रोगी के कै, दस्त किये हुए कपड़े कितने ही लोग नदी, कुँए पर ले जाकर धोते हैं। इस तरह पानी खराब हो जाता है और जो लोग इसे पीते हैं वे इससे पीड़ित हो जाते हैं। कभी कभी यह रोग उन बर्तनों में भोजन करने से या पानी पीने से होता है जो कि हैजे के विष से दूषित हुए पानी में धोए गए हैं।

आंत्रिक ज्वर–Typhoid fever—यह भी प्रायः पानी द्वारा

फलता है। जो मनुष्य इस रोग से पीड़ित मनुष्य के मल-मूल से दूषित पानी पीता है इस रोग से पीड़ित होता है।

विषमज्वर-Malaria—प्रत्यक्ष दूषित पानी के सेवन से यह नहीं होता, परंतु खराब पानी का संचय होने से वहाँ मच्छड़ पैदा होते हैं और उनके द्वारा यह रोग होता है।

कृमि रोग-Parasitic diseases—कृमि-रोग से पीड़ित मनुष्यों के पुरीष में कृमिओं के अंडे बहुतायत से पाये जाते हैं, और जब पानी ऐसे मल से दूषित होता है तो ये अंडे पानी में पाए जाते हैं। यदि ऐसा दूषित पानी पिया जाय तो अण्डे आमाशय में पहुँचकर शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार फैलते हैं। इस तरह से होनेवाले रोग गंडूपद कृमि (Round worm), सूत्र कृमि (Thread worm), स्फीत कृमि (Tape worm), बडिश कृमि (Hook worm), प्रतोद कृमि (Whip worm), स्नायुक कृमि (Guinea worm), और यकृत कृमि (Distoma Hepaticam) है, इनके अलावा खराब पानी का इस्तेमाल करने से नेत्राभिष्यन्द, दाद, खुजली इत्यादि त्वचारोग, श्वासकास प्रतिश्यादि रोग पैदा होते हैं।

पानी की शुद्धि

व्यापन्नस्यचाग्निकथनं सूर्यातपप्रतापनं तप्तायः पिंडसिकता लोष्ट्रानां वा निर्वापणम्। सुश्रुत ॥

वस्त्रपूतं पिबेज्जलं। मनुस्मृति ॥

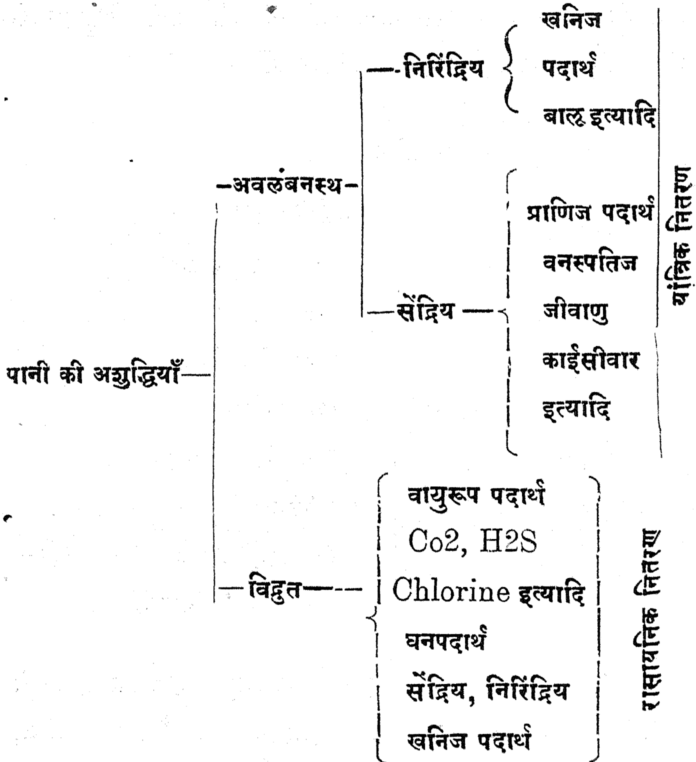
उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि मनुष्य यदि खराब पानी से होनेवाले रोगों से अपनी रक्षा करना चाहे तो उसे पानी विशुद्ध करके पीना चाहिये। पानी विशुद्ध करने की रीतियाँ—

१—स्वाभाविक

२—कृत्रिम
- १—भौतिक विधि
  - (अ) तिर्यक् पातन
  - (आ) उक्वथन
- २—रासायनिक विधि
  - (अ) प्रक्षेपण
  - (आ) निर्जंतु करण
- ३—यांत्रिक
  - (अ) मंद नितरण
  - (आ) शीघ्र नितरण

पानी में जो अवलंबनस्थ सूक्ष्मांश तथा विद्रुत पदार्थ होते हैं उनको पानी से अलग करना यह पानी के शुद्धि का अर्थ है। पानी में जो अशुद्धियाँ होती हैं उनकी शुद्धि उपर्युक्त विधियों से कैसे होती है यह स्पष्टतया नीचे बतलाया है।

अशुद्धियों की तालिका



पानी की स्वाभाविक शुद्धि—यह शुद्धि नदी में तथा जहाँ पानी बहुत होता है वहाँ हो सकती है। पानी शुद्धि करने में निम्नलिखित बातें सहायभूत होती हैं।

१—पानीका बड़ा संचय—पानी बहुत होने से मैले की तीव्रता उसमें जाकर कम हो जाती है।

२—पानी का प्रवाह--प्रवाह के कारण से पानी में जो गंदगी आती है वह एक स्थान में एकत्रित न होकर प्रवाह के साथ तमाम पानी में मिलकर नीचे निकल जाती है ।

३—सूर्य का प्रकाश—जीवाणुओं को मारने में सूर्य का प्रकाश, विशेष करके उस में जो पाटल रश्मियाँ (ultra violet rays) होती हैं, विशेष सहायभूत होता है ।

४—जलवासी वनस्तति ।

५—जलवासी मछली ।

६—आक्सिजन ।

७—मृतोपजीवी जीवाणु (Saprophytic Bacteria)

आक्सिजन और जलवासी वनस्पतियाँ मैले को आक्सडाईज़ करके निर्विष कर डालती है । मछली मैला खा डालती है ।

कृत्रिम शुद्धि

तिर्यक् पातन—(Distillation) तिर्यक पातन करने से पानी विशुद्ध हो जाता है, तथापि सामान्य व्यवहार में बड़े पैमाने पर इसका उपयोग करना मुश्किल की बात है । इस विधि का विशेष उपयोग जहाज़ों पर किया जाता है । इस विधि से शुद्धि कृत पानी जायकेदार नहीं होता, इसलिये पीने के पहिले इसको हवायुक्त (Aerated) करना पड़ता है । सीसा, जसद इत्यादि धातुओं पर इसका असर जल्दी होता है इसलिये इन धातुओं के वर्तनों में इसका संचय नहीं करना चाहिये ।

उक्वथन—सबसे सहज, उत्तम और आसान तरीका पानी शुद्ध करने के लिये पानी को उबालना है। उबालने से पानी की अस्थायी कठिनता निकल जाती है बहुतेरे रोगोत्पादक जीवाणु मरजाते हैं, और पानी में विलीन हुए अमोनिया H2s इत्यादि वायुरूप पदार्थ निकल जाते हैं।

रासायनिक शुद्धिकरण

प्रथम प्रकार के रासायनिक द्रव्यों से पानी में जो मैला होता है वह तली में बैठ जाता है, उसको प्रक्षेपक द्रव्य (Preipitants) कहते हैं।

चूना—इसका उपयोग पानी की अस्थायी कठिनता निकालने के लिये होता है और इससे क्यालसिअम कार्बोनेट तली में बैठ जाता है।

फिटकिरी (Alum)—फिटकिरी पानी में डालने से क्यालसिअम कार्बोनेट जो कि पानी में हमेशा हुआ करता है, विघटित होकर अनघुल क्यालसिअम सल्फेट तथा अल्यूमिनम हयाड्रेट प्रक्षेप में आकर जीवाणुओं को तथा दूसरे अशुद्धियों को अपने साथ लेकर नीचे तली में बैठ जाता है और ऊपर स्वच्छ पानी रहता है। फिटकिरी की मात्रा पानी की शुद्धाशुद्धता पर तथा क्यालसिअम कार्बोनेट के मिकदार पर निर्भर रहती है, तथापि एक ग्यालन पानी के लिए ५-६ ग्रेन फिटकिरी पर्याप्त होती है। हाल में फिटकरी के बदले फिटकिरी और लोहे का यौगिक (Alumino ferri) अधिक प्रयुक्त किया जाता है। इसकी मात्रा एक ग्यालक के लिए १½ ग्रेन काफी हो जाती है। उसका विशेष फायदा यह है कि उसकी लागत फिटकिरी से तिहाई होती है, परंतु हानि यह है कि

यह पानी को स्थायी कठिन बना देता है। यदि फिटकरी पानी में डालने के बाद ५ ग्रेन चूना पानी में डाला जाय तो पानी की निर्मलता ज्यादा हो जाय।

आयरन पर क्लोराइड (Iron perchloride)—एक ग्यालन पानी के लिए २½ ग्रेन मात्रा में इसका उपयोग किया जाता है।

निर्मली—निर्मली का फल (Strychnos Potatorum) पानी के साथ रगड़कर पानी में मिला देने से थोड़ी देर में पानी की सारी मैल नीचे तली में बैठ जाती है। १०० ग्यालन पानी के लिए ३० ग्रेन निर्मली का फल काफी हो जाता है। यह विधि विशेष सुरक्षित नहीं है।

जंतुघ्न द्रव्यों से शुद्धिकरण

पोटयाशिअम परम्यांग्यानेट—जिन सेंद्रिय पदार्थों पर जीवाणु पलते हैं उनको आक्सडाइस करके यह द्रव्य अप्रत्यक्षतया जीवाणुनाशक होता है। यह बदबूनाशक भी है (Deodorant)। यह प्रायः कूप, तालाब इत्यादिक का पानी शुद्ध करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। हैजे के जीवाणुओं से दूषित जल को विशुद्ध करने के लिए इसका प्रयोग प्रथम हंकिन नामक शास्त्रज्ञ ने बतलाया, इसलिए इस विधि को हंकिनी-करण (Hankinisation) का विधि कहते हैं। यह विधि अभी हाल में पानी शुद्ध करने के लिए आम-तौर पर प्रयुक्त की जाती है। पानी में यह द्रव्य इतनी मिकदार में डालना चाहिए कि पानी का रंग हलका-सा गुलाबी हो जावे और चार घंटों तक वैसा ही रहे। क्लार्क और गेज नामक शास्त्रज्ञों ने प्रयोग करके यह बतलाया है कि पानी के

एक लाख भाग में यदि $\frac{1}{2}$ भाग भी इस द्रव्य का हो तो चार से छ घंटों की अवधि में ९८ फी सदी जीवाणु मर जाते हैं। कांडी का द्रव (Condy's fluid) नामक जो पदार्थ होता है उसमें पोक्याशिअम परम्यांग्यानेट के स्थान में सोडिअम परमांग्यानेट होता है।

तुत्थ (Copper sulphate)—इसको पानी में डालने से काई, सेवार इत्यादि जलवासी वनस्पतियों की वृद्धि रुक जाती है, तथा रोगोत्पादक जीवाणुओं का भी विनाश होता है। दस लाख भाग में इसका केवल ०·१ भाग ही इस काम के लिए पर्याप्त होता है। १ लाख भाग में यदि इसका १ भाग हो तो आंत्रिक ज्वर के तथा दूसरे रोगोत्पादक जीवाणु २४ घंटे के अंदर नष्ट हो जाते हैं। कॉपर क्लोराईड (Copper Chloride) तुत्थ से अधिक परिणाम-कारक है। पानी में १२ घण्टों तक सिर्फ तांबे का पतला पत्रा डालने से भी यह जंतु विनाश का काम हो सकता है। तांबे के यह जीवाणुनाशक गुण के कारण आयुर्वेद में पानी के लिये इसका पात्र इस्तेमाल करने के लिये कहा है।

जलपात्रं तु ताम्रस्य। भावप्रकाश।

इसका उपयोग करने का तरीका यह है कि तुत्थ की पोटली को रस्सी से बाँधकर इसको पानी में फिराना।

क्लोरिन (Chlorine)—यह वायु पाटेयाशिअम क्लोरेट (Potassium chlorate) पर हायड्रोक्लोरिक ॲसिड डालकर तयार किया जाता है, और फिर दस लाख भाग में १ भाग के अनुपात से पानी में मिलाया जाता है। इससे रोगोत्पादक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। पानी विशुद्ध करने का यह बड़ा सस्ता और आसान तरीका है। गत महायुद्ध

में बड़े पैमाने पर इसका उपयोग किया गया था। अभी हाल में पानी का यांत्रिक नितारक से नितारण होने के बाद उसको अत्यंत विशुद्ध करने के लिये इस वायु का उपयोग किया जाता है।

इस विधि से पानी अच्छी तरह से क्लोरिन युक्त (Chlorination) हुवा है या नहीं यह जानने के लिये पानी विशुद्ध होने के बाद आधा घंटा उस पानी में स्टार्च के ताजे घोल के कुछ बूँद डालकर फिर उसमें पोटयाशिअम आयोडाईड का एक छोटा सा स्फटिक डालना चाहिये। यदि पानी अच्छी तरह से क्लोरिन युक्त हुवा हो तो पानी का रंग नीला हो जायगा।

क्लोरिन के बदले विरंजन चूर्ण (Bleaching Powder) या चूने का हायपोक्लोराईट (Calcium Hypochlorite) का भी प्रयोग किया जाता है। एक ग्यालन के लिये १० ग्रेन काफी हो जाते हैं। आज कल कुओं में भीं पानी शुद्ध करने के लिये ये प्रयुक्त किये जाते हैं। और उसके लिये २–६ औंस काफी होते हैं। घरेलू कामों के लिये इनसे तयार किया हुआ हलोझोन (Halazone) नामक पदार्थ मिलता है। इसकी एक या दो वटिका १ सेर पानी के लिये काफी होती है और आधे घंटे में पानी शुद्ध हो जाता है।

कभी-कभी ज्यादा क्लोरिन होने के कारण पानी में उसकी बास और रुचि महसूस होती। उसको रफा करने के लिये पानी में सोडियम थायोसल्फेट डाला जाता है।

ब्रोमिन—Bromine—पोटयासिअम ब्रोमाइड की सहायता से ब्रोमिन का ०·०६ ग्रेन पानी में घुलाकर यदि एक लिटर पानी में

डाला जाय तो पांच मिनिट के अंदर तमाम जीवाणु मर जायगें। उसका विशेष गंध दूर करने के लिये सोडियम सल्फाइट तथा सोडिअम कार्बोनेट (Sodium Sulphite and Carbonate) पानी में डालना चाहिये।

आयोडिन—Iodine—वेलर्डने (Vaillard) जलवासी जीवाणुओं को मारने के लिये आयोडिन का प्रयोग किया है। उसने नीली, लाल, और सफेद तीन प्रकार की गोलियां बनाई हैं। नीली गोली में ०.१ ग्राम पोटयाशिअम आयोडाईड, और ०.०१६ ग्राम सोडिअम आयोडेट तथा मेथिलिनब्ल्यू होता है। लाल गोली में ०.१ ग्राम टार्टरिक असीड और फ्यूसीन (Fuchsin) होता है। सफेत गोली में ०.१२ ग्राम सोडिअम हायपोसल्फेट होता है। एक लिटर पानी में एक लाल और एक नीली गोली डालने से आयोडिन पानी में स्वतंत्र रूप से मुक्त हो जाता है। इसके प्रभाव से पांच दस मिनिट में रोगोत्पादक जीवाणु मर जाते हैं। !पंद्रह मिनट के बाद सफ़ेद गोली पानी में डाली जाती है जिससे स्वतंत्र आयोडिन उदासीन (Neutralised) होकर पानी पीने योग्य हो जाता है।

नेसफील्ड की वटिका—Nesfield's Tablets—इस वटिका में सोडियम आयोडाईड आयोडेट (Sodium iodide-iodate) और जंबीराम्ल (Citric Acid) रहता है। चार ग्यालन पानी में दो ग्रेन की सोडियम आयोडाइट आयोडेट की वटिका तथा दो ग्रेन जंबीराम्ल डालने से विषूचिका और आंत्रिक ज्वर के जीवाणु कुछ मिनिट में नष्ट हो जाते हैं।

ओझोन-Ozonization—बड़े पैमाने पर पानी विशुद्ध करने के लिए इस वायु का उपयोग यूरोप के अन्य देशों में बहुत किया जाता है। यह विधि बहुत खर्चीली है। यह वायु सेंद्रिय अशुद्धियों को अक्सडाईझ करता है, और जलवासी तथा रोगोत्पादक जीवाणुओं को नष्ट कर डालता है। सिर्फ कुछ जीवाणुओं के स्पोर शेष रहते हैं, लेकिन पानी के साथ ये निगल जाने से हानिकारक नहीं होते। खनिज अशुद्धियों पर इस वायु का प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये इस वायु का प्रयोग करने के पहिले खराब पानी को नितारक से विशुद्ध करना पड़ता है। एक लिटर पानी के लिये ओझोन का १-३ मिलिग्राम पर्याप्त होता है।

इसका प्रयोग करने के पहिले इसको एक कमरे में बिजली की सहायता से उत्पन्न करते हैं और फिर जलाशय के तल पर पहुँचाते हैं। ऊपर की ओर फैलता हुआ यह वायु पानी के साथ मिलकर उसे शुद्ध कर डालता है।

अल्ट्राव्हायोलेट रेज—Ultra-Violet rays—पानी विशुद्ध करने की यह विधि रासायनिक नहीं है बल्कि भौतिक है, क्योंकि ये किरण पानी में कोई रासायनिक फर्क नहीं करते हैं तथा पानी के साथ कोई रासायनिक पदार्थ नहीं बनाते हैं। केवल अपने साक्षात् प्रभाव से जल में होनेवाले जीवाणुओं को नष्ट कर डालते हैं। केवल इन किरणों के जंतुघ्न प्रभाव के कारण इनका रासायनिक जंतुघ्न द्रव्यों के बराबर विवरण किया है। ये किरण कृत्रिमरीतया पारदबाष्प विद्युद्दीप (Westinghouse Cooper Hewitt Mercury lamp) से तयार किये जाते हैं। प्रकृति में ये सूर्य-प्रकाश में पाये जाते हैं, और इन किरणों पर

सूर्य-प्रकाश का जीवाणुनाशक गुण-धर्म विशेष करके निर्भर है। यह दीप पाषाण-स्फटिक या क्वार्ट्ज़ (Fused rockcrystal or quartz) के नलिका में रखा जाता है, और शुद्ध-जल उस नलिका के ऊपर बहता रहता है, ताकि इन किरणों का पानी के ऊपर अधिक से अधिक प्रभाव हो। पानी का मटियालापन या उसमें किसी प्रकार के पिच्छिल द्रव्य की विद्यमानता इन किरणों की क्रिया में बाधा डालती है, इसलिये इन किरणों का प्रयोग करने के पूर्व यांत्रिक नितारक द्वारा पानी शुद्ध और निर्मल होना अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो इनका प्रभाव बहुत आस्ते आस्ते होता है। जितना पानी निर्मल होता है, उतना इन किरणों का जीवाणुमारक प्रभाव अधिक प्रतीत होता है। मिग्यूल (Miguel) नामक शास्त्रज्ञ ने यह बतलाया है कि निर्मल पानी में ये किरण कॉली (coli bacilli) जीवाणुओं को १५ से २० सेकण्ड में नष्ट करते हैं. आंत्रिक ज्वर के जीवाणुओं को १० से २० सेकण्ड में और ज्यादा से ज्यादा प्रतिकार करनेवाले जीवाणुओं के स्पोरों को ३०से ६० सेकण्ड में नष्ट करते हैं।

यांत्रिक नितारक (Mechanical filter)

यांत्रिक नितारक दो प्रकार के होते हैं:—

१—मन्द बालू का नितारक (Slow sand filter)।

२—शीघ्र यांत्रिक नितारक (Rapid mechanical filter)।

मन्द-बालू का नितारक—इस में पानी की शुद्धि करने के लिये कंकड़ तथा बालू का प्रयोग किया जाता है। ये नितारक सामान्यतया शहर के बाहर तथा नदी या नद के समीप होते हैं। प्रथम नदी के एक

विशिष्ट स्थान से जहाँ नदी के पानी को कोई दूषित नहीं कर सकता पानी लेकर बड़े-बड़े प्रक्षेपक जलाशयों में (Settling tank) संचित किया जाता है। इसमें जलवासी ठोस अवलंबनस्थ सूक्ष्म पदार्थ तली में बैठ जाते हैं। यह प्रक्षेप सामान्यतः बालू, खनिजक्षार, तथा मिट्टी का होता है। इस प्रक्षेप को समय समय पर तली से खरोंच कर निकालना पड़ता है, इसलिये प्रक्षेपक जलाशय अनेक होने की जरूरत है। डॉ० हाउस्टन ने (Dr. Houston) यह बतलाया है कि इस जलाशय में यदि पानी ३० दिन तक संचित रहे तो प्रक्षेपण, आक्सडायक्सेसन और सूर्य-प्रकाश से तमाम रोगजनक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

चौबीस से अड़तालीस घंटे के बाद इनमें से पानी दूसरे स्थान में पहुँचाया जाता है जिसको नितारक कहते हैं।

नितारक—नितारक पक्के, बड़े, और चौकोर होकर ईंटे और सीमेंट के बने रहते हैं। इनके तली पर ईंटों की दो स्तरों से इस प्रकार नालियाँ बनी होती हैं कि जिनमें निथरा हुआ पानी आसानी से बह सके। ईंटों के बीच में तथा ईंटों के ऊपर २-३ फुट गहराई का कंकड़ का परत होता है। इस स्तर में बड़े बड़े खुरदरे कंकड़ नीचे और छोटे-छोटे ऊपर रखे जाते हैं। इन कंकड़ों के स्तर का कार्य ऊपर के महीन बालू के स्तर को सहारा देने का है। इस कंकड़ के स्तर के ऊपर २-३ फुट गहराई का महीन रेती का स्तर होता है। इस स्तर में भी बड़ी-बड़ी रेती नीचे और महीन रेती ऊपर रहती है। यही महीन रेती का स्तर पानी का नितारक है। रेती जितनी महीन होगी पानी का नितरण भी उतना ही अच्छा होगा यह रेती समुद्र के किनारे से या नदी के मध्यभूमि से ली जाती

है। इस रेत के स्तर के ऊपर पानी का स्तर होता है जिसकी गहराई ३६ से ५२ इंच तक होती है।

इस नितारक से जो पानी की शुद्धि होती है वह मेक्यानिकल पद्धति द्वारा होती है, रासायनिक पद्धति से बहुत थोड़ी ही होती है। जो मैला पहिले प्रक्षेपक जलाशय के तली में नहीं बैठता प्राय: इस रेतीली स्तर पर आकर छन जाता है। दो-तीन दिन के बाद इस स्तर के ऊपर तथा रेती के बीच में एक चिपचिपा-सा पतला स्तर बन जाता है, जो कि पानी के नितरण में विशेष भाग लेता है। यह स्तर काई तथा अन्य निम्न-श्रेणी की वनस्पतियों से बनता है। इसलिए तीन दिन के बाद जब कि यह स्तर ठीक तौर से बन जाता है, पानी का नितरण अच्छा होने लगता है। बहुत दिन के बाद जब यह स्तर मोटा होकर नितरण धीरे-धीरे होने लगता है तो इस स्तर को हटाना आवश्यक हो जाता है। इस स्तर को हटाने के बाद नया दूसरा स्तर तयार होने तक जो पानी नितारक से आता है उसे विशुद्ध जल के संचायक में नहीं छोड़ना चाहिए। हर वक्त यह स्तर हटाने के लिए रेती का कुछ $\frac{1}{2}$ इंच गहराई का भाग निकल जाता है। ऐसे कई मर्तबा होने के बाद जब रेती के स्तर की गहराई १६ इंच से कम होती है तो सब रेती को हटाकर नई रेती बिछानी पड़ती है। इस नितारक से पानी विशुद्ध होने के लिए पानी की गति प्रतिघण्टा चार इंच से अधिक नहीं होना चाहिए, अथवा एक दिन में एक वर्गफुट स्थान से ६० ग्यालन या एक एकड़ स्थान से २५०००००० ग्यालन पानी निथरना चाहिए। आजकल इस नितारक के कंकड़-पत्थर के स्तर की गहराई कुछ कम करके रेती की

गहराई बढ़ाई जाती है। यदि नितारक अच्छी तरह से बनाया गया होगा तो ९८ प्रतिशत जीवाणु पानी में से पृथक हो जायँगे।

पूचशबल की विधि—(The Puech-chabal System)—पानी यदि अत्यन्त मटियाला हो तो उपर्युक्त नितारण विधि से विशेष निर्मल नहीं हो सकता। ऐसे मटीले पानी के लिए फ्रान्स देश में एक विशेष पद्धति प्रयुक्त की जाती है जिसको 'पूचशवल सिस्टम' कहते हैं। इस विधि में नितारक पर पानी छोड़ने के पहिले कंकड़-नितारक से पानी की थोड़ी शुद्धि की जाती है, और फिर उस पानी को नितारक पर छोड़ देते हैं। अभी हाल में इस पद्धति का प्रयोग कानपुर में हो रहा है। लेकिन यह पद्धति बहुत खर्चीली होने के कारण हर एक म्युनिसपाल्टी इसका प्रयोग करने में असमर्थ होती है।

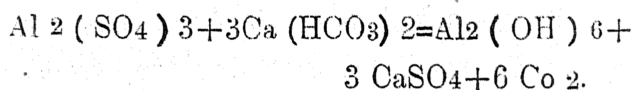
शीघ्र यांत्रिक नितारक—बालू के नितारक में यह दोष है कि, इसके आयोजन करने में, सफा करवाने में खर्च, ध्यान और अधिक समय की जरूरत पड़ती है, और इतना होने पर भी नितारण क्रिया बहुत धीरे-धीरे होती है। इसलिये इसके स्थान पर अभी हाल में दूसरे नितारकों का आविष्कार हो रहा है। ये नितारक सस्ते, आयोजन में सरल, कम स्थान घेरनेवाले, और उनकी नितारण क्रिया भी बहुत तेज होती है। ये नितारक हमेशा बन्द कमरे में या छायादार स्थान में होते हैं और लकड़ी, लोहा, या सीमेंट के बने बेलन जैसे होते हैं। इनकी गहराई ७ फुट हो कर नितरण करने के लिये कंकड़-पत्थर के स्तर पर ४—५ फुट गहराई के कार्टझ्र के रेती का प्रयोग किया जाता है। मटियाले पानी के लिये ये बहुत फायदेमन्द होते हैं। इनको अमेरिकन-नितारक कहते हैं, क्योंकि

सर्व-प्रथम इनका आविष्कार अमेरिका में हुआ था। अभी हाल में इनका प्रयोग भारतवर्ष में भी हो रहा है।

इन शीघ्र नितारकों से प्रतिदिन एक वर्गफुट से १०० से १३० ग्यालन या एक एकड़ से १००,०००,००० ग्यालन पानी निथारा जाता है।

इन नितारकों की विशिष्टता यह है कि पानी में एक रासायनिक पदार्थ मिलाया जाता है जो कि पानी पर एक चिपचिपा-सा स्तर पैदा करता है। फिर इस पानी को नितारक में छोड़ा जाता है। यह पदार्थ अल्यूमिनम सल्फेट है जो पानी में मौजूद रहनेवाले अल्कलाईन अर्थ के साथ मिलकर अल्यूमिनम हाड्रोक्साईड का चिपचिपा स्तर बनाता है।

यह प्रति-क्रिया इस प्रकार से होती है।



$$Al_2(SO_4)_3 + 3Ca(HCO_3)_2 = Al_2(OH)_6 + 3\,CaSO_4 + 6\,Co_2.$$

यह प्रति-किया ठीक तौर पर होने के लिये पानी में क्यालसिअम बायकार्बोनेट काफी तादाद में होना चाहिए। यदि उसकी कमी हो तो सोडा या चूना मिलाने की जरूरत पड़ती है। यह अल्यूमिनम हाड्रो-क्साईड का स्तर नितारक के रेती के ऊपर बैठ जाता है, और जैसा मंद नितारक में काई, सिवार इत्यादि का स्तर काम करता है उसी के अनु-सार यह अल्यूमिनम हाड्रोक्साईड का चिपचिपा स्तर उपयोगी पड़ता है। अल्यूमिनम हाड्रोक्साईड की राशि प्रति ग्यालन ½ ग्रेन तक लगती है और यह राशि पानी के साथ प्रक्षेपक जलाशय में विशेष यन्त्र द्वारा मिलाई जाती है और पानी कई घण्टों तक वैसा ही रक्खा जाता है।

इसके बाद यह पानी बड़े जोर के साथ नितारक में छोड़ा जाता है। मन्द-नितारक की अपेक्षा इस शीघ्र-नितारक में जीवाणुओं से विमुक्त होने की स्थिति कुछ कम दर्जे की होती है, इसलिये नितारित पानी फिर क्लोरिन, ओझोन, अल्ट्राव्हायोलेट किरण इत्यादि द्वारा निर्जंतुक किया जाता है।

शीघ्र नितारक में नीचे लिखे हुए फायदे होते हैं।

१—नितरण की क्रिया जल्दी होती है। एक-एकड़ स्थान से रोजाना १०००००००० ग्यालन पानी शुद्ध हो सकता है।

२—यह विधि सस्ती और थोड़े स्थान में होती है।

३—नितरण की क्रिया संतत होती है।

४—नितारक-स्तर को बदलने की जरूरत नहीं पड़ती और उसकी सफाई भी आसानी से कुछ मिनिटों में हो सकती है। मन्द बालुका-नितारक में नितारक स्तर बदलने के लिये ३० मनुष्यों को आठ घण्टे काम करना पड़ता है।

५—नितारक स्तर शीघ्र नितारक में २० मिनिट में तयार हो जाता है। मन्द नितारक में करीब-करीब तीन दिन स्तर तयार होने के लिये जरूर लगते हैं।

इन शीघ्र नितारकों में दोष इतना ही है कि जीवाणुओं की दृष्टि से जितनी शुद्धता मन्द नितारकों में हुआ करती है उतनी इनमें नहीं हो सकती।

आजकल इस प्रकार के नितारक बहुत प्रचलित हो गये हैं। उनमें प्याटरसन (Paterson filter), ज्युएल (Jewell filter), बेल

(Bell filter) और, क्यांडी (Candy filter), फिल्टर विशेष प्रसिद्ध हैं।

इस शीघ्र नितारक में जो एक दोष बतलाया है उसको हटाने के लिये नितारित पानी क्लोरिन, ओझोन, अलट्राव्हायोलेट किरण द्वारा फिर निर्जंतुक किया जाता है।

घरेलू नितारक

बड़े बड़े शहरों में जहाँ म्युनसीपल कमेटी है वहां विशुद्ध पानी का प्रबंध सामान्यतः होता है, तथापि देहातों में, छोटी छोटी बस्तियों में जहां ऐसा प्रबंध नहीं है, मनुष्यों को घर में ही पानी विशुद्ध करके पीना चाहिये। घरेलू कामों के लिये तिर्यक् पातन (पान ७५), उत्क्वथन (पान ७६), रासायनिक द्रव्य का उपयोग (पान ७७), और घरेलू फिल्टरों का उपयोग किया जाता है।

घरेलू फिल्टर—सब से उत्तम फिल्टर वह है जो कि पानी अच्छी तरह से विशुद्ध करता है। ये फिल्टर अक्सर चीनी मिट्टी के पोर्सीलेन के बने हुए बत्ती की शकल के होते हैं। यह बत्ती चीनी-मिट्टी के बेलनाकार बर्तन में पेच के द्वारा जुटी हुई रहती हैं, और इसका संबंध नल के साथ रहता है। आज कल इस प्रकार के तीन फिल्टर प्रचलित है। पाश्चर चेंबरलेंड, (Pasteur Chamberland), बर्केफिल्ड (Berkefeld), पोर्सीलेन डी' अमिअंटे (Porcelaine D' Amiante)

प्रथम प्रकार का फिल्टर चमकीले केओलीन (Kaoline) नामक द्रव्य का बना रहता है, और इससे पानी निथारने के लिये

पानी का जोर या दबाव बहुत लगता है, नहीं तो इससे पानी बहुतमंद फिल्टर होता है। इससे जलवासी जीवाणु तथा अवलंबनस्थ सूक्ष्मांश सब फिल्टर हो जाते हैं, परंतु पानी की रासायनिक घटना में यह कोई फरक नहीं लाता क्योंकि इसका प्रभाव केवल मेक्यानिकल है।

बर्कफिल्ड फिल्टर किसलगर (Kiesselgurh) नामक द्रव्य का बना रहता है। इसकी रचना प्रथम प्रकार के फिस्टर जैसी होती है, तथापि यह विशेष छिद्रा रहता है। इस कारण से इससे पानी भी शीघ्र विशुद्ध हो जाता है। यदि पानी का दबाव प्रतिवर्ग इंच २२½ पौंड हो तो एक मिनिट में २ पाईंट (करीब करीब १॥ सेर) पानी मिल सकता है।

तीसरे प्रकार का फिल्टर मिट्टी और असबेस्टास (Asbestos) का बना रहता है। जलवासी जीवाणुओं को रोकने के लिये यह विशेष प्रभावशाली होता है, तथापि बहुत मंद होने के कारण घरेलू कामों के लिये उपयोगी नहीं होता।

इनमें पाश्चर का फिल्टर विशेष विश्वसनीय और पायदार है। हमेशा इसका उपयोग करने से इसके सूराख मिट्टी से बंद हो जाते हैं और उनमें जीवाणुओं की वृद्धि होने लगती है। इसलिये जल वाह्य रोगों से पूर्ण बचना हो तो इसकी भीतरी बत्ती प्रति तीसरे दिन खौलते हुए पानी में शुद्ध करना चाहिये। ऐसा करने से रोगों से भी रक्षा होती है और पानी का नितरण भी ठीक होता रहता है।

तीन घड़ा फिल्टर—पानी शुद्ध और ठंडा करने के लिये इस प्रकार के फिल्टर का प्रचार भारतवर्ष में विशेष है। इसमें तीन या चार घड़े एक दूसरे के ऊपर घड़ौंची पर रखे जाते हैं। ये घड़े प्रायः मिट्टी के

बने रहते हैं। सब से ऊपर के घड़े में साफ किया जानेवाला खराब पानी रखा जाता है। इस घड़े की पेंदी में एक छोटा सा पतला सूराख रहता है, जिसमें रूई का फोया होता है और जिसमें होकर पानी दूसरे घड़े में टपकता है। इस दूसरे घड़े में सबसे नीचे तिहाई कंकड़, उसके ऊपर तिहाई लकड़ी का कोयला और उसके ऊपर महीन रेत का स्तर रहता है। जो पानी ऊपर के घड़े से धीरे धीरे उसमें टपकता है पहिले रेत में होकर छनता है, जिससे अवलंबनस्थ सूक्ष्मांश रेत में रह जाते हैं। उसके बाद कोयले की तह पर पहुँचता है। कोयले में ग्यास को अपने भीतर सोखने की शक्ति है। इसलिये पानी में घुले हुए वायु-रूप पदार्थ इस कोयले के पर्त में सुख जाते हैं। इसी तरह से दूसरे घड़े में पानी शुद्ध होकर तीसरे में आता है। कभी-कभी तीन के स्थान में चार घड़े होते हैं, तब दूसरे घड़े में कोयला होता है और तीसरे घड़े में कंकड़ और महीन रेत होती है और चौथे में शुद्ध पानी रहता है। इसमें जो कोयला बर्ता जाता है उसको सप्ताह में एक दफा बदलना चाहिये, तथा कंकड़ और रेत को महीने में एकदफे सफा करके सूर्य-प्रकाश में तप्त करना चाहिये।

मामूली तरह से इन फिल्टरों का जल शुद्ध रहता है, तथापि जब जलवाह्य रोगों की महामारी—यथा विषूचिका, आंत्रिक ज्वर, अतिसार इत्यादि—जोर से जारी रहती है तब फिल्टर करने के बाद भी पानी को खूब अच्छी तौर से खौलाकर पीना स्थास्थ की दृष्टि से पथ्यकर है।

पानी विशुद्ध करने के बाद यदि उसके संचय में सावधानता न रखी जाय तो फिर पानी खराब होने की संभावना बहुत होती है।

जल रखने के लिये सब से बढ़ियां बर्तन पीतल या तांबे का होता है। इनको हमेशा स्वच्छ तथा चमकीले रखना चाहिये। धूलि, मिट्टी इत्यादि से बचाने के लिये इनके मुख पर सदा ढक्कन रखना चाहिये। इन्हें कभी भी सीढियों के नीचे तथा आस-पास नहीं रखना चाहिये क्योंकि मनुष्यों के आवागमन के कारण से इनमें धूलि पड़ने की बहुत संभावना होती है। गर्मी के मौसम में इन धातुओं के बर्तनों में पानी गरम हो जाता है, इसलिये मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करना जरूरी है, तथापि यह ध्यान में रखना चाहिये कि इनको जल्दी जल्दी बदलना जरूरी है। लकड़ी बर्तनों में पीने का पानी कभी नहीं रखना चाहिये क्योंकि वे जल्दी गलकर पानी को खराब कर डालते हैं।

शहरों में पानी का बँटवारा

बड़े बड़े शहरों में पानी का प्रबंध करने के लिये पानी सामान्यतः नदी से, नहर से, नदी के किनारे खोदे हुए कूपों से, तालाब से या पहाड़ों के माथे पर किये हुए सरोवर से लिया जाता है। आगरे में नदी से, मेरठ में नहर से, अहमदाबाद और सूरत में नदी के किनारे के कूपों से, अजमेर में तालाब से और बंबई में विहार, तुलसी, तानसा इत्यादि सरोवरों से पानी लिया गया है। किसी भी निकास से पानी लिया गया हो, उसे प्रथम नितारक द्वारा शुद्ध करके तदनंतर जल संचायक में (Storage Reservoir) रखना चाहिए। इनसे बंदनल द्वारा शहर में पानी पहुँचाया जाता है। पहुँचाने के लिये जिस शक्ति की आवश्यकता होती है, शहर यदि नीची सतह में हो तो पृथ्वी के

गुरुत्वाकर्षण से मिलती है। परंतु यदि शहर ऊँची सतह पर हो या उसका तल जल-संचायक से ऊंचा हो तो शहर में पानी पहुँचाने के लिये शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। जल संचायकों का आयतन इतना होना चाहिये कि शहर को ८ दिन पानी की रसीद पहुँचा सके। इन संचायकों को ३ महीने में एक मर्तबा साफ रखवाना चाहिये। इन संचायकों से जो नल शहर के भिन्न भिन्न भागों में पानी पहुंचाते हैं उनको मुख्य नलक (Mains) कहते हैं। ये लोहे के बने रहते हैं और उनके भीतर से पानी का असर न होने के लिये इन पर अंगसस्मिथ का द्रव (Angussmith Solution यह द्रव कोलतार, राल और अतसी के तेल का बना रहता है) या चमकीला वार्निश (Vitrius Glaze) पोत देते हैं। ऐसा करने से ये जंगार से बच जाते हैं। इनका व्यास कम से कम ३ इंच का होना चाहिये और ये सड़कों के पृष्ठ भाग से तीन फुट गहराई पर बिछाने चाहिये, ताकि सर्दी-गर्मी इत्यादि से इनका बचाव हो सके।

इन मुख्य नलिकाओं से छोटी-छोटी नलिका द्वारा पानी घर-घर में पहुँचाया जाता है। ये नलिकाएँ सीस या ग्यालव्हनाइजड लोहे की होती हैं। सीस की नलिकाओं के जल्दी मुड़ जाने के कारण इनका प्रयोग बहुत होता है, तथापि जहाँ तक हो सके इनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। सीस के ऊपर पानी का असर होकर सीस पानी में जल्दी घुल जाता है, और ऐसा पानी लगातार पीने से सीस-विष नामक रोग (पृष्ठ ७०) होने की संभावना होती है।

ये नलिकाएं मुख्य नलकों के साथ पीतल के पेचदार (Brass

Ferrules) ढक्कन के साथ जुड़ी रहती हैं और घरों में पानी का नियमन टोंटी द्वारा होता है। नलक और नलिकाओं के जोड़ इतने पक्के होने चाहिये कि उनमें से पानी न टपके। इन नलिकाओं को परनाले के नज़दीक नहीं रखना चाहिये नहीं तो इनका पानी परनाले की दूषित हवा से खराब होने का डर रहता है।

दरिद्रता के कारण जो लोग घर में पानी की टोंटी नहीं ले सकते हैं, उनके लिये सड़कों में फासले-फासले पर पानी की कल (Stand Post) रखना जरूरी है। यह कल ऐसे प्रकार की होनी चाहिये कि आप से आप बंद रहें और दबाने से कम से कम पानी बाहर आ सके।

जहाँ पानी की कमी से विशुद्ध जल हर कामों के लिये देना मुश्किल होता है वहां शुद्ध और अशुद्ध जल का प्रबंध भिन्न-भिन्न रहता है। शुद्ध जल पीना, रसोई बनना इत्यादिक कामों के लिये थोड़ा काल दिया जाता है और अशुद्ध जल मोरियां साफ करने के लिये, सड़कों पर छिड़काव करने के लिये, आग बुझाने के लिये, कपड़े धोने के लिये दिया जाता है। ऐसा करने से शुद्ध जल बहुत कम लगता है तथापि इसमें डर ऐसा होता है कि गलती से अशुद्ध जल पीने के लिये प्रयुक्त हो जाने की संभावना होती है, और शुद्ध जल की नलिका अशुद्ध जल के बड़े नलकों के साथ जोड़ने की संभावना होती है। इस पद्धति को दोहरी पद्धति (Dual System) कहते हैं।

शहर में पानी का प्रबंध संतत या खंडित (Constant and intermittant) दो प्रकार का होता है। संतत में पानी चौबीस घंटा चला रहता है, और खंडित में पानी आने जानेका समय नियत

और नियमित रहता है। संतत में घर में पानी का संचय करने की जरूरत नहीं पड़ती तथापि इसमें पानी व्यर्थ खर्च होने की बहुत संभावना होती है। जल-मापक (Water meter) का प्रयोग करने से व्यर्थ खर्च को रोक सकते हैं।

असंतत में पानी की कुछ बचत हो सकती है, तथापि आखिर में यह पद्धति लाभदायक नहीं होती। कारण, नलिकाओं के कुछ समय खाली रहने के कारण परनाले से या नजदीक के मोरिओं से गंदे पदार्थ या हवा आने का डर रहता है। पानी का संचय करने के लिये बड़े बड़े हौजों की जरूरत होती है। थोड़े समय में तमाम शहर को पानी देना पड़ता है इसलिये बड़े बड़े नलकों की जरूरत पड़ती है। यदि कहीं आग लग जाय तो उस जरूरत पर पानी मिलना मुश्किल हो जाता है।

जल सेवन संबंधी कुछ नियम

१—ऐंद्रमंबु सुपात्रस्थमविपन्नं सदापिबेत्।

तदभावेच भूयिष्ठमंतरिक्षानुकारि यत्॥ अष्टांग हृदय॥

सदा सर्वदा आंतरिक्ष जैसे विशुद्ध जल का सेवन किया करो। विशुद्ध जल ही केवल शरीर का आधार हो सकता है। गंदा पानी पीने से तरह तरह की बीमारियाँ पैदा होती हैं। जहाँ विशुद्ध जल मिलने का ठीक प्रबंध नहीं है वहाँ पानी खूब अच्छी तरह से खौलाकर पीना चाहिये। जलवाह्य रोगों से बचने का सब से सादा और निश्चित उपाय यही एकमात्र है।

२—नपिबेत्...तप्तं दंत ग्राहयति शैत्यतः॥ अष्टांग हृदय॥

प्रकृतावस्था में पानी कभी भी अति उष्ण या अति शीत नहीं पीना चाहिये। सांप्रत गर्मी के मौसम में बर्फ मिश्रित ठंडे पेय (Cold-drink) पीने की कुटेव दिन-ब-दिन बढ़ रही है। यह रीति बिलकुल स्वास्थ्य-हानिकारक है। पीने के समय ये पेय सुखकारक मालूम होते हैं परंतु अंत में ये दुःखकारक है। अत्यंत उष्ण या अत्यंत शीत पानी या दूसरे पदार्थ खाने से या पीने से दांतों की जड़ खराब होकर वे जल्दी निकम्मे हो जाते हैं। दांत निकम्मे हो जाने के बाद अन्न अच्छी तरह से चबा कर नहीं खाया जाता है और आखिर में अग्निमांद्य, अजीर्णादि रोग परंपरा उत्पन्न होती है। इसलिये अति शीत या अति उष्ण पानी नहीं पीना चाहिये।

३—पानी चाहे किसी समय क्यों न पिया जाय, सदैव घूंट घूंटकर पीना चाहिये। गटागट पानी पीने से प्यास शांत नहीं होती, और जरूरत से ज्यादा पानी पिया जाता है, और पानी एकदम पी जाने के कारण उसमें लार मिश्रित नहीं होती। लार-मिश्रित पानी अन्न पचाने में मदद करता है। घूंट-घूंटकर पानी पीने से प्यास शांत हो जाती है, जरूरत के मुताबिक पिया जाता है तथा उसके साथ लार मिश्रित हो जाती है। इसलिये सदैव पानी घूँट-घूँटकर पीना चाहिये।

४—अध्वश्रांते क्षुधाक्रांते शोकक्रोधातुरेषुच।
विषमासनोपविष्टेच पीतं वारि रुजाकरम्।
तस्मात् प्रसन्नेमनसि पानीयं मंदमाचरेत् ॥हारीतसंहिता॥

परिश्रम करके थके मांदे अवस्था में, क्षुधाक्रांत अवस्था में, क्रोधाविष्ट अवस्था में तथा विषम अवस्था में पानी नहीं पीना चाहिये। कुछ

देर तक आराम करके शरीर की समस्थिति होने के बाद पानी का सेवन करना स्वास्थ्य-पोषक है ।

> भक्तस्यादौ जलं पीतमग्निसादं कृशांगताम् ।
> अंतेकरोति स्थूलत्व मूर्ध्वं मामाशयात् कफम् ।।
> मध्ये मध्यांगतां साम्यं धातूना जरणं सुखम् ।। वाग्भट।।

भोजन और जलपान का क्या सम्बन्ध होना चाहिये यह बड़ा महत्व-पूर्ण तथा उलझनदार प्रश्न है । इस विषय पर भिन्न भिन्न विद्वानों की संमतियाँ पृथक-पृथक हैं । तिस पर भी इस पर जो सर्वसम्मत नियम हैं वे ये हैं । यदि भोजन के पहिले पानी पीना हो तो एक घंटे पहिले पीना चाहिये । इससे आमाशय अच्छी तरह से धुलजाता है और अन्न-ग्रहण करने के लिये तयार होता है । पानी जज्ब होकर लालारस, जाठर-रस को भोजन के समय उत्तेजित करके काफी तादाद में अन्नपाचन करने के लिये बाहर निकाल देता है और भोजन में प्यास कम लगती है । भोजन के बिलकुल प्रथम पानी पीना ठीक नहीं, इससे भूक बिलकुल कम हो जाती है ।

भोजन के समय पानी जहाँ तक हो सके नहीं पीना चाहिए । भोजन के समय पानी पीने की बुरी आदत इस संसार में केवल मनुष्यों में पाई जाती है; दूसरे प्राणियों में नहीं पायी जाती । एक अँग्रेज शास्त्रज्ञ ने लिखा है :—

'Man is the only animal who eats and drinks at the same time.' संसार में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो खाने और पीने का कार्य एक समय करता है । भोजन के समय पानी

पीने से जठर रस (Gastric guice) पतला होकर उसकी पचनशक्ति दुर्बल हो जाती है। इसी से अन्न का पचन ठीक नहीं होता । दूसरी बात यह है कि पानी आमाशय में पहुँचने के बाद आधा घण्टे में ही नीचे आँतों में उतर जाता है, परन्तु अन्न का आमाशयिक पचन होने के लिए कम-से-कम तीन घण्टे लगते हैं। इसलिए यदि अन्न के साथ पानी का भी सेवन किया जाय तो अन्न भी आधा पका अवस्था में पानी के साथ नीचे आंतों में उतरता है।

भोजन के समय जो प्यास लगती है वह प्रायः झूठी प्यास होती है और इसका कारण भोजन के समय पानी पीने का चिर अभ्यास ही है। दूसरे, भोजन के समय उन्हें प्यास लगती है जिनको बिना चबाए जल्दी-जल्दी भोजन करने की आदत होती है। ग्रास को पानी के साथ गले से उतार देने से मुखकी लार जिसमें भोजन पचाने की ताकत होती है, उचित परिमाण में अन्न के साथ नहीं मिलती और जो कुछ मिलती है पानी के साथ पतली होकर निकम्मी हो जाती है। भोजन के समय उन्हें ही प्यास लगती है जिनके भोजन में मिर्च मसाले इत्यादि ज्यादा तादाद में होते हैं। इसलिये यदि भोजन में मिर्च मसाले ज्यादा न हों तथा भोजन चबा-चबाकर खाया जाय तो भोजन के समय प्यास मालूम नहीं होगी।

दूसरा, भोजन के साथ पानी न पीने का कारण यह है कि भोज्य-द्रव्य सामान्यत: उष्ण होते हैं और उष्ण पदार्थ के साथ ठंडा पानी पीना दाँतों के लिये हानिकारक है।

भोजन के समय यदि पानी पीना हो तो थोड़ा थोड़ा पानी पीना चाहिये ।

प्रक्षालयेदद्भिरास्यं भुंजानस्यमुहुर्मुहुः ।
विशुद्धरसने तस्मै रोचतेन्नमपूर्ववत् ॥ सुश्रुत ॥

थोड़ा थोड़ा पानी पीने से भोजन में रुचि आती है और अन्न पचाने में सहायता होती है ।

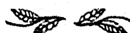
भोजन करने के बाद अन्नपचन होने के पहिले पानी पीने से वही परिणाम होता है जो कि भोजन के बीच में पीने से होता है ।

भोजनांते विषं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् ।

हमेशा भोजन करने के पीछे २–३ घंटे के बाद पानी पीना चाहिये क्योंकि आमाशयिक पचन होने के लिये ३ घंटे की अवधि लगती है ।

६—जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वं तु तन्मयम् ।
नातोत्यंत निषेधेन कदाचिद्वारि वार्यते ॥
अत्यंबु पानान्न विपच्यतेन्नं निरंबुपानाच्च स एवदोषः ।
तस्मान्नरोवन्हि विवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारिपिबेदभूरि । भावप्रकाशः

संक्षेप में जिस वख्त पानी की प्यास मालूम हो उस वख्त पानी का सेवन जरूर करना चाहिये, क्यों कि प्यास शरीर के भीतरी आवश्यकता की निदर्शक है, लेकिन एक समय बहुत पानी पीना ठीक नहीं, थोड़े थोड़े पानी का सेवन बहुत समय करना स्वास्थ की दृष्टि से हितकारक है ।



पंचम अध्याय

अन्न का कार्य

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति ।
वर्ण प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम् ॥
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ चरक ॥
आहारः प्राणिनः सद्यो बलकृद्देहधारकः ।
आयुस्तेजःसमुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्धनः ॥ सुश्रुत ॥

हवा आर पानी के बाद शरीर का तीसरा आधार अन्न है लेकिन इस संसार में अन्न की जितनी कदर की जाती है उतनी शायद दूसरे किसी वस्तु की नहीं की जाती। इसका एकमात्र कारण यह है कि प्राचीन काल से प्राणीमात्र को अन्न प्राप्त करने के लिये कष्ट उठाना पड़ता है, मेहनत-मजदूरी करना पड़ता है, देश या विदेश ढूंढ़ना पड़ता है, तिस पर भी आजकल पेटभर अन्न मिलना मुष्किल हो गया है। परमेश्वर की यह परम कृपा समझना चाहिये कि हवा और पानी के लिये प्राणि-मात्र को कष्ट उठाना तथा धन खर्चना नहीं पड़ता है। इन तीनों आधारों के लिये यदि मनुष्यमात्र को कष्ट उठाना पड़े तो शायद इस संसार में रहना भी मुश्किल हो जायगा।

हमारा शरीर जब से इस संसार में अवतीर्ण होता है तब से मरते दम तक कुछ न कुछ कार्य करता रहता है। जब हम गाढ़ निद्रा में सोते हैं तो हमारे शरार को कुछ आराम मिलता है जरूर, तथापि संपूर्ण शरीर के संपूर्ण इंद्रियों को संपूर्ण आराम जब तक आदमी जिंदा है तब तक

नहीं मिल सकता; मृत्यु ही एकमात्र संपूर्ण आराम है। गाढ़ निद्रा में हृदय का काम चला करता है, फेफड़ों से श्वासोश्वास का काम होता रहता है, आँतों में पचन का काम जारी रहता है, गरज़ प्रतिक्षण शरीर की कुछ न कुछ क्रिया, मनुष्य गाढ़ निद्र में क्यों न हो, होती रहती है। यह क्रिया जिन अवयवों में या इंद्रियों में होती है उनके क्रिया के साथ कुछ भाग नष्ट हो जाता है। ये नष्ट हुए सेल मलमूत्र, थूक, पसीना इत्यादिक के साथ शरीर के बाहर निकल पड़ते हैं। बड़ा परिश्रम या व्यायाम करने के बाद जो थकान आती है उसका एक कारण इस शरीर का ह्रास है। कई शास्त्रज्ञों ने यह सिद्धांत स्थिर किया है कि हमारा कुल शरीर सात वर्षों की अवधि में नये रूप में गठित हो जाता है अर्थात् हमारे शरीर में सात वर्ष के पहिले जो रस रक्तादि धातु थे उनका लेशमात्र भी आज उसमें मौजूद नहीं है, तथा आज हमारे शरीर में जो धातु है वे सात वर्ष के बाद इसी शरीर में नहीं पाए जाएँगे।

यह जो हमारे शरीर में प्रतिक्षण और प्रतिक्रिया ह्रास हो रही है उसकी पूर्ति न होती तो हमारा शरीर दुबला-पतला और क्षीण होकर थोड़े ही समय में प्राण धारण करने के लिये योग्य नहीं होता। परंतु प्रकृतावस्था में यह दशा नहीं होती। यदि भोजन मिले तो कड़े से कड़े परिश्रम करने से भी शरीर क्षीण होने के वजाय हृष्ट-पुष्ट और मजबूत बनकर मरने के बजाय दीर्घजीवी होता है।

इसके साथ-साथ यह भी देखा जाता है कि बिना परिश्रम करके यदि अनाहार किया जाय तो भी शरीर दुबला और क्षीण हो जाता है। इसका कारण यह है कि शब्द बोलने, सोचने-विचारने या चिन्ता करने,

यही नहीं श्वास लेने तक से भी शरीर में कुछ न-कुछ ह्रास अवश्य ही होता है। इन दोनों उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि हमारे शरीर में जो ह्रास होता है उसकी पूर्ति करनेवाला आहार ही है, आहार के सिवाय यह काम दूसरी किसी वस्तु से, हवा और पानी शरीर के लिए कितने ही जरूरत के क्यों न हों, नहीं हो सकता। भोजन से शरीर के नष्ट हुए सेलों (cell) के स्थान में नए सेल आते हैं और शरीर ज्यों का त्यों रहता है। आहार का यह प्रथम कार्य है।

हमारा शरीर जब इस संसार में नवजात बालक के स्वरूप में अवतीर्ण हुआ तब हमारे शरीर का वजन ६–७ पौंड के करीब था, लंबाई २० इञ्च के करीब थी और शरीर के दूसरे नाप और बाँट इन दोनों के प्रमाण के अनुसार थे। तब से माता का दूध पीते-पीते और उसके बाद भोजन करते करते २५-३० बरस की उमर तक हमारा शरीर इतना बढ़ गया कि उसका वजन १५० पौंड हो गया, लंबाई ६० से ७० इंच हो गयी और शरीर के दूसरे नाप और बाँट उनके मुताबिक हो गए। बाल्यावस्था के शरीर-संगठन में जो महदंतर हो गया उसका एकमात्र कारण आहार है। जन्म से हमारे शरीर में हलचल करने के कारण जो ह्रास होता था उसकी पूर्ति करने के अतिरिक्त आहार ने शरीर के तमाम धातुओं की वृद्धि करके शरीर में यह स्थित्यन्तर पैदा किया। इसलिए आहार का दूसरा कार्य धातुओं की वृद्धि करने का है।

हमारे शरीर में सदैव एक प्रकार की दहन क्रिया होती रहती है और यह क्रिया हमारे शरीर को गरम रखती है। मनुष्य प्राणि के शरीर का तापक्रम, यद्यपि उसमें प्रकृति, काल-भेद के कारण कुछ फरक हो सकता

है, प्राय: ९८'२ फारनहीट पर रहता है, चाहे वह ठंड या गरम देश में रहे, चाहे गरम या ठंड ऋतु में रहे। शरीर की गरमी जिंदगानी का एक लक्षण है, केवल मृत्यु के पश्चात शरीर ठंढ़ा हो जाता है। यह जो शरीर में गरमी पैदा होती है जिससे शरीर सदैव गरम रहता है भोजन से ही प्राप्त होती है। यह अन्न का तीसरा कार्य है।

मनुष्य का शरीर एक जीवित-यंत्र (Steam-Engine) है। ऐञ्जिन का दृष्टांत मनुष्य के शरीर को अच्छी तरह से फबता है। जैसे ऐञ्जिन में कोयला जलाने से उष्णता पैदा होती है और उस उष्णता का कुछ भाग शक्ति में परिवर्तित होता है, उसी के अनुसार मनुष्य के शरीर में भोज्य-द्रव्यों के, विशेष करके कार्बन के, आक्सायडेशन से (Oxidation) उष्णता पैदा होती है और उसी उष्णता के कुछ भाग का परिवर्तन होकर शक्ति पैदा होती है। इन दोनों विषयों में मनुष्य का शरीर ऐञ्जिन से कहीं अच्छा है, क्योंकि ऐञ्जिन को जितना कोयला लगता है उसका २२'७ से ३३'७ फी सदी भाग उष्णता में परिवर्तित हो जाता है और जितनी उष्णता पैदा होती है उसका $\frac{१}{८}$ भाग शक्ति में परिवर्तित होता है। इसके मुकाबले में मनुष्य जो अन्न खाता है उसका ज्यादा से ज्यादा ४५ फीसदी भाग उष्णता में परिवर्तित होता है और जो उष्णता पैदा होती है उसका $\frac{१}{५}$ भाग शक्ति में परिवर्तित होता है। तात्पर्य यह है कि शक्ति उष्णता का रूपांतर है और जैसी उष्णता भोजन से ही प्राप्त होती है वैसी शक्ति भोजन से ही मिल सकती है। यह अन्न का चौथा कार्य है।

इस प्रकार शरीर में अन्न के चार कार्य होते हैं।

१—शारीरिक ह्रास की पूर्ति ।

२—शारीरिक धातुओं की वृद्धि ।

३—उष्णता की उत्पत्ति ।

४—शक्ति की उत्पत्ति ।

इससे यह स्पष्ट है कि जिन आहार्य-पदार्थों से शरीर में ह्रास की पूर्ति, धातुओं की वृद्धि, तथा उष्णता और शक्ति पैदा होती है उन आहार्य-पदार्थों को हम 'अन्न' कह सकते हैं ।

बलकृत्तापजननं धातूनां वृद्धिकारणम् ।
ह्रासपूर्तिकरं यच्च तदन्नंहि समुच्यते ॥



षष्ठ अध्याय

अन्न की संघटना

पंचभूतात्मके देहे आहारः पांचभौतिकः ।
विपकः पंचधासम्यक् स्वान् गुणानभिवर्धते ॥ सुश्रुत ॥

मनुष्य प्राणियों का शरीर आहार से ही बना है ।

देहो ह्याहार संभवः । चरक

इसलिये हमारे आहार के घटक वे ही पदार्थ हो सकते हैं जो कि हमारे शरीर के हैं । जिस आहार्य-पदार्थ में ये घटक नहीं होंगे उसे वस्तुतः अन्न कहना ही अनुचित है । अतएव आहार के घटकों का विचार करने के पहले शरीर के घटकों का विचार करना ज़रूरी है ।

रसायनशास्त्र की दृष्टि से इस संसार में ८३ मूलतत्व हैं, जिनसे यह पृथ्वी बनी है। इन ८३ मूलतत्वों में से शरीर की बनावट में २३ मूल-तत्व पाये जाते हैं, जिनमें १३ विशेष परिमाण में होते हैं। एक युवा मनुष्य के शरीर में, जिसका वज़ह १४८ पौंड है, ये तत्व औसतन कैसे कैसे पाये जाते हैं यह नीचे तालिका में दिया है।

आक्सिजन	९२.४ पौंड	क्लोरीन	०.१२ पौंड
कार्बन	३१.६ ,,	सोडिअम	०.१२ ,,
हाड्रोजन	१४.६ ,,	लोहा	०.०२ ,,
नाट्रोजन	४.६ ,,	पोट्यासिअम	०.३४ ,,
फास्फरस	१.४ ,,	म्यागनेसिअम	०.०४ ,,
क्यालसिअम	२.८ ,,	फ्लोरिन	०.०२ ,,
गंधक	०.२४ ,,		
		कुल	१४८

ये सब पदार्थ हवा, आहार और जल के सेवन से शरीर को मिलते हैं। इनमें आक्सिजन, हाड्रोजन और कार्बन यद्यपि शरीर के धातुओं के बनावट में भाग लेते हैं तथापि उनका मुख्य कार्य उष्णता तथा शक्ति पैदा करने का है। नाट्रोजन यद्यपि शक्ति और उष्णता पैदा करने में कुछ भाग लेता है, तथापि उसका मुख्य कार्य शरीर के धातु बनाने का है। इन चार तत्वों के सिवा दूसरे जो तत्व शरीर में मौजूद हैं उनका उपयोग शरीर में शक्ति पैदा करने के लिये बिलकुल नहीं हो सकता। क्यालसिअम, म्याग्नेसिअम, सोडिअम, पोटयासिअम, फास्फरस, इनका अस्थि बनाने के काम में उपयोग होता है। लोह रक्त के लाल दाने

बनाने के काम में आता है। दूसरे अवशिष्ट तत्व शरीर के दूसरे काम में (osmosis, General Metabolism) आते हैं। यदि इन मूलतत्वों की कमी हो तो शरीर का विकास अच्छी तरह से नहीं हो सकता। यद्यपि इतने मूल-तत्व शरीर में होते हैं, तथापि सिवा आक्सिजन के वे मूलावस्था में नहीं पाये जाते, यौगिकरूप में मिलते हैं। इन मूल-तत्वों से जो यौगिक पदार्थ हमारे शरीर में मिलते हैं उन्हें ५ प्रधान श्रेणियों में विभक्त किया है।

१—नाट्रोजनयुक्त या प्रोटीन या मांस जातीय पदार्थ।

२—फ्याट या मेद जातीय पदार्थ।

३—कार्बोहाइड्रेट या श्वेतसारजातीय पदार्थ।

४—क्षार।

५—जल।

शरीर के जब ये पांच प्रकार के घटक हैं तो हमारे आहार के भी ये ही पांच प्रकार हो सकते है।

प्रोटीन या मांस जातीय पदार्थ—(Proteins)--इस प्रकार के खाद्य-द्रव्यों को नाट्रोजनस या मांसोत्पादक पदार्थ कहते हैं, और ये खाद्य-द्रव्यों में सर्वप्रधान है। इनमें नाट्रोजन होता है। इनकी घटना

नाट्रोजन	१६	प्रतिशत	हाड्रोजन	७	प्रतिशत
कार्बन	५४	,,	गंधक	१	,,
आक्सिजन	२२	,,			

पोषक गुण के अनुसार प्रोटनीस् के दो वर्ग किये जाते हैं।

१—योग्य प्रोटीन—(True Proteins)—इनमें कार्बन

और नाट्रोजन का अनुपात ७'.२ होता है। ये पचने में हलके होते हैं। इनके उदाहरण—अल्ब्यूमिन-(Albumin), अंडे का सफेता, मांस का मायोसिन (Myosin), फायब्रिन (Fibrin), गेहूँ के आटे का ग्लूटिन (Gluten), दाल का लेग्यूमिन (Legumin), दूध का क्यासिन और ग्लोबिन (Casein and globin) हैं।

२–अयोग्य प्रोटीन या अल्ब्यूमिनॉडवर्ग—(Albumi noid group)—इनमें नाट्रोजन और कार्बन का अनुपात २: ५$\frac{1}{2}$ होता है। ये हजम होने में इतने हलके नहीं होते, और पौष्टिकता की दृष्टि से भी ये इतने महत्व के नहीं होते। इनके उदाहरण—स्नायु बंधन का ज़ेल्याटिन (Jelatin), तरुणास्थि का कांड्रिन (Chondrin), अस्थिओं का ऑसिन (Ossein), शृंगों का केर्याटिन (Keratin) हैं।

प्रोटीनस् का कार्य—शारीरिक धातुओं के सेलों के ये घटक होते हैं, अतएव शारीरिक-ह्रास की पूर्ति तथा वृद्धि के लिये ये अत्यंत आवश्यक हैं, और यही इनका प्रधान कार्य है।

२—इसके अतिरिक्त शरीर के पाचक रस तथा दूसरे रस भी प्रोटीन की ही सहायता से उत्पन्न होते हैं। यह इनका दूसरा कार्य है।

३—वख्त जरूरत पर शक्ति तथा उष्णता पैदा करके कार्बोहाइड्रेट का भी कार्य करते हैं। यह इनका तीसरा कार्य है।

४—कोई विशिष्ट अवस्था में ये शरीर में मेद (Fat) भी तयार कर सकते हैं। दूध की चरबी प्रायः खाद्य पदार्थों में जो प्रोटीन का भाग होता है उससे ही बनती है। यड इनका चौथा कार्य है।

इतने विविध कार्य होते हुए भी इनका प्रधानकार्य शारीरिक ह्रास

की पूर्ति और वृद्धि है, यह कभी नहीं भूलना चाहिये। यह कार्य ऐसा है जो कि दूसरे प्रकार के खाद्य द्रव्यों से हरगिज नहीं हो सकता। इसलिये इनका बदला खाद्य-द्रव्यों में दूसरा नहीं है।

इनके प्रधान कार्य को उपलक्ष्य में रखकर यदि विचार किया जाय तो यह स्पष्ट है कि शिशुओं के खाद्य-द्रव्यों में इस जातीय पदार्थ की विशेष आवश्यकता है। क्योंकि शैशवावस्था शरीर वर्धन का काल है। यदि इस अवस्था में इन पदार्थों की कमी होगी तो शरीर का विकास और वृद्धि ठीक तौर पर होना असंभव है। मानसिक श्रम करनेवालों के लिये भी इस प्रकार के पदार्थों की विशेष आवश्यकता हुआ करती है, क्योंकि शारीरिक श्रम की अपेक्षा मानसिक श्रम से शरीर क्षय विशेष परिमाण में होता है।

प्रोटीनस् प्राणिवर्ग तथा वनस्पतिवर्ग दोनों में भी पाये जाते हैं। प्राणिज पदार्थों में से मांस, मछली, अंडे, दूध इत्यादि में ये अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। वनस्पतिज पदार्थों में सूखे मेवे, गेहूँ और दालों में इनका आधिक्य होता है। प्राणिज प्रोटीन पचन होने में हलके रहते हैं, लेकिन इनसे ऐसे जहरीले संचायी (Accumilative) स्वरूप के पदार्थ शरीर में पैदा होते हैं कि वातरक्त (Gout) इत्यादि रोग होने की संभावना होती है।

कार्बोहाइड्रेट—Carbohydrate—ये कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सिजन के यौगिक हैं, लेकिन आक्सिजन और हायड्रोजन पानी में जिस अनुपात से (H_2O) पाये जाते हैं उसी अनुपात से इनमें होते हैं। इनका मुख्य कार्य ताप और शक्ति उत्पादन करने का है। यदि

ज्यादा मात्रा में इनका सेवन किया जाय तो ये मेद में रूपांतरित हो जाते हैं। मानसिक श्रम करनेवालों की अपेक्षा शारीरिक श्रमकरनेवालों को इनकी विशेष आवश्यकता है, तद्वत् शीत काल तथा शीत देशों में शारिरिक उष्णता स्थिर रखने के लिये भी इनकी जरूरत पड़ती है। मुख्यतया ये वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं। इनमें प्रधान खाद्य शर्करा, साबूदाना, आलू, रतालू, चावल इत्यादि हैं।

मेद—Fat—ये ग्लिसरीन और मेदसाम्ल (FattyAcids) के यौगिक हैं। कार्बोहाड्रेट और मेद की रासायनिक घटना एक सी है। इनमें कार्बन, हाड्रोजन और आक्सिजन होता है, लेकिन आक्सिजन की राशि हाड्रोजन के साथ मिलकर पानी बनाने में जितनी लगती है उससे कुछ कम होती है। इसका मुख्य कार्य शारीरिक अल्ब्युमिन का ह्रास कम करने का है, इसलिये अल्ब्युमिन-ह्रास रक्षक (Albumin sparing food) खाद्य कहते हैं। केवल प्रोटीन खाद्य पर यदि शारिरिक प्रोटीन का हास की पूर्ति करना पड़े तो प्रोटीन की मात्रा खाद्य द्रव्यों में बहुत बढ़ाना पड़ेगी। परन्तु यदि प्रोटीन के साथ मेद युक्त खाद्य खाया जाय तो प्रोटीन बहुत कम लगता है। इनका दूसरा कार्य शरीर में उष्णता तथा शक्ति पैदा करनेका है। यदि मेद जरूरत से ज्यादा तादाद में सेवन किया जावे तो वह शरीर में संचित शक्ति का काम (Source of energy) करता है। यदि मेद और कार्बोहाड्रेट सम भाग में सेवन किया जाय तो मेद से कार्बोहाड्रेट की अपेक्षा २॥ गुणा शक्ति ज्यादा पैदा होती है। यानी १ माशा स्नेह पदार्थ से जितनी शक्ति या ताप शरीर में पैदा होता है, उतनी शक्ति या ताप पैदा करने के लिये २॥ मासा कार्बोहड्रेट की जरू-

रत पड़ेगी । इसी कारण से मेदी मनुष्य मरिअल मनुष्य की अपेक्षा उपवास को बहुत दिन तक बरदाश्त कर सकता है। जंगम मेदसपदार्थ वनस्पति के मेद की अपेक्षा आसानी से पचते हैं। घी, मक्खन, मछली का तेल, नारियल का तेल, तिल्ली का तेल ये स्नेह वर्ग के मुख्य हैं।

वानस्पतिक अम्ल—(Vegetable acids)—यद्यपि इनको सचमुच खाद्य नहीं कह सकते, तथापि स्वास्थ के लिए ये जरूर हैं। इनमें टार्टरिक, सायट्रिक, आक्-झालिक अम्ल (tartaric, Citric, Oxalic acids) प्रधान है। ये ताजे वनस्पतियों या फलों में याता स्वतंत्ररूप में या क्षार के रूप में पाये जाते हैं। पचन क्रियाके समय ये कार्बोनेट में रूपांतरित हो जाते हैं, और रक्त तथा शरीर के अन्य द्रवों की अलकलिनिटी (Alkalinity) स्थिर रखने में बहुत सहायभूत होते हैं। शरीर में ये आक्सडाईस होकर शरीर की उष्णता में भी कुछ सहायता करते हैं। यदि खाद्य द्रव्यों से इनको बिलकुल हटा दिया जाय तो रक्त की स्थिति खराब होकर स्कर्व्ही इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

खनिज क्षार—शरीर का हर एक भाग क्षार के मेल से बना है और प्रोटीन जैसा यह शरीर के विकास में आवश्यक है।

इनमें लवण (Sodium chloride), चूना, सोडीअम, पोटयाशिअम म्याग्नेशिअम, और लोह के फास्फेट इत्यादि होते हैं। नमक खनिजक्षार में विशेष महत्व का है, और शरीर के कुल धातु तथा द्रव में पाया जाता है। पित्त के क्षार भी इसी से बनते है। जाठर रस में (Gastric juice) जो हायड्रोक्लोरिक असिड होता है वह इसीसे बनता है। जीवित रहने के लिये नमक अत्यंत आवश्यक है। यदि खाद्य

द्रव्यों से नमक बिलकुल हटा दिया जाय तो ऐसा लवणहीन आहार शीघ्र ही मारक होता है। नमक का बहुत सा भाग मांस रोटी इत्यादिक के साथ लिया जाता है, तथापि यह क्षार स्वतंत्र रूप में ही सेवन किया जाता है।

क्यालसीअम फास्फेट अस्थियों के वृद्धि के लिये विशेष जरूर है, इसलिये बालकों के खाद्य-द्रव्यों में इसका होना अत्यंत आवश्यक है। यह मुख्यतया दूध, चावल और अंडों में पाया जाता है। रक्त में जो लाल दाने (Red blood cells) होते हैं उनके भीतर हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) होता है, जिसके बनावट में लोहे के क्षार की जरूरत पड़ती है। सिवा हीमोग्लोबिन के, स्नायुओं में तथा दूसरे धातुओं में लोह का सूक्ष्मांश पायां जाता है।

ये सब क्षार खाद्य-द्रव्यों में से शरीर को प्राप्त होते हैं। नमक का कुछ भाग खाद्य-द्रव्यों से मिलता है, तथापि उसकी जरूरत उससे ज्यादा होने के कारण स्वतंत्र रूप में भी इसका सेवक करना पड़ता है।

जल—जल एक ऐसा खाद्य-द्रव्य है कि जिसके सहायता से ही शरीर के भीतरी कुल रासायनिक परिवर्तन होते हैं। हमारे शरीर के धातुओं के सेल (Cell) जलवासी (Aquatic) है, सिवा जल के वे कुछ कर नहीं सकते। खाद्य-द्रव्यों का पचन तथा सात्मीकरण जल के ही सहायता से होता है। शरीर के भीतर प्रतिक्षण जो नाना प्रकार के दूषित पदार्थ पचन क्रिया में तथा शारीरिक-ह्रासपूर्ति तथा वृद्धि में पैदा होते हैं वे मलमूत्र स्वेद इत्यादिक के रूप में सुगमतापूर्वक जल के ही सहायता से निकल जाते हैं। जल ही रक्त को तरलावस्था में रखता

है तथा दौरान खून में सहायभूत होता है। यदि पानी कम मिले तो खून और रस गाढ़ा होकर रक्त परिभ्रमण में बाधा डालता है, नाड़ी क्षीण और मंद होती है, धमनी गत रक्त भार (Arterial Tension) कम हो जाता है और आखिर में हृदय की गति बंद होकर मृत्यु तक हो जाती है।

मनुष्य को रोजाना करीब करीब १०० औंस पानी की आवश्यकता पड़ती है, तथापि यह राशि मनुष्य के रहनसहन, परिश्रम, देश, आहार, ऋतु भेद पर आश्रित रहती है। ठंडे देश में तथा ठण्डे ऋतु में उष्ण देश तथा उष्ण ऋतु से कम पानी की आवश्यकता प्रतीत होती है। सुस्त मनुष्य को परिश्रम करनेवालों की अपेक्षा कम पानी लगता है। मांसाहारी को शाकाहारी की अपेक्षा ज्यादा पानी की जरूरत पड़ती है क्योंकि मांसाहार से शरीर में युरिक असीड (Uric Acid ज्यादा तादाद में पैदा हुआ करता है, जिसको शरीर से निकलवाने के लिये ज्यादा पानी की जरूरत पड़ती है। यदि शरीर में पानी के कमी से या दूसरे कारण से इस द्रव्य का संचय होय तो वातरक्तादि (Gout) रोग होने की संभावना रहती है।

शरीर को जितना पानी लगता है उतना जलके स्वरूप में नहीं लिया जाता है। २०-३० फी सदी खाद्य-द्रव्यों में से लिया जाता है, ७-८ फी सदी खाद्य-द्रव्यों के पचन में शरीर के भीतर ही तयार हो जाता है, और शेष जल दूध इत्यादिक के स्वरूप में लिया जाता है।

मनुष्य के शरीर से करीब करीब १०० औंस पानी बाहर निकलता है, उसमें फी सदी ३५ त्वचा द्वारा, २० फी सदी फेफड़ों द्वारा, ३ फी

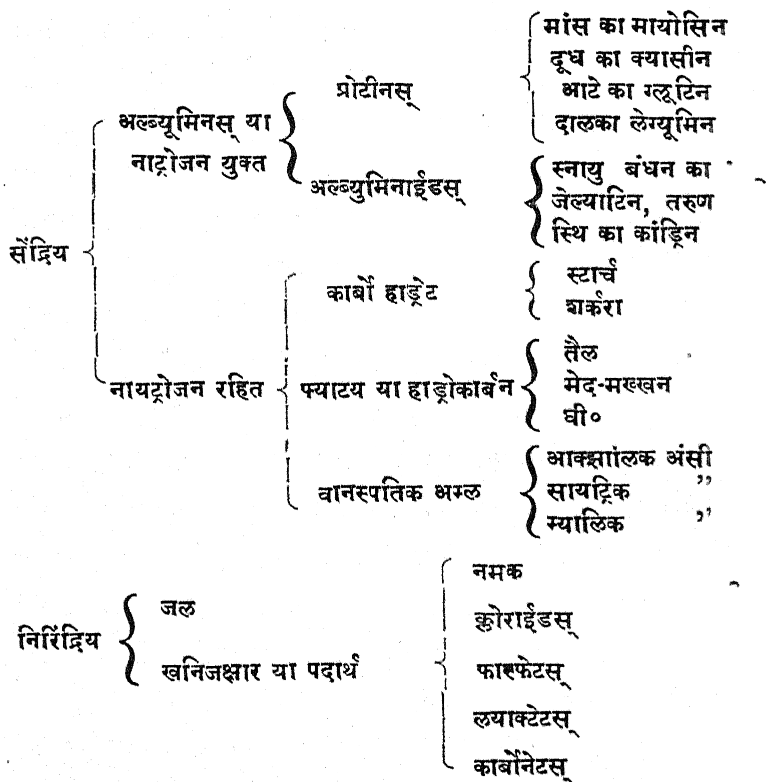
सर्दी मल थूक इत्यादि द्वारा और शेष मूत्र द्वारा निकल जाता है। इस तरह प्रतिक्षण जल-तत्व शरीर के बाहर निकल जाता है और उसके न्यूनता का अनुभव हमें तृषा के स्वरूप में अनुभूत होने लगता है। जल-पान करने से वह जल-तत्व की कमी पूरी होती है, और जब उसकी कमी पूरी होती तब प्यास भी आप से आप शान्त हो जाती है। इसलिये शरीर के भीतरी जल के आवश्यकता का सूचक तृषा को मानना चाहिये। अतएव मनुष्य स्वस्थ या अस्वस्थ अवस्था में यदि उसको प्यास मालूम हो तो पानी पीने का कभी भी इनकार नहीं करना चाहिये।

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविनाशिनी।
तस्माद्देयं तृषा र्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥भावप्रकाश॥

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शरीर की पूरी बृद्धि तथा स्वास्थ्यरक्षा करने के लिये उक्त पांचों प्रकार के खाद्य द्रव्यों की अत्यंत आवश्यकता है। केवल ऋतुभेद के अनुसार इनका उपयोग यथोचित प्रमाण में करना यही व्यक्तिमात्र का कर्त्तव्य है।

नित्यं सर्व रसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ ॥ वाग्भट ॥

आसीनी के लिये उपरोक्त अन्न के घटकों का स्पष्टीकरण नीचे तालिका से किया है।



जीवद्रव्य

उपरोक्त पांच या छः प्रकार के खाद्य-द्रव्यों से शरीर का पोषण अच्छी तरह से होना चाहिये, लेकिन यदि उपरोक्त खाद्य-द्रव्य विशुद्ध रासायनिक अवस्था में किसी प्राणी को दिया जाय, तो उसकी पुष्टि और विकास अच्छी तरह से नहीं हो सकता। इस प्रयोग से यह अनु-

मान किया गया है कि प्राकृतिक खाद्य-द्रव्यों में, विशेष करके वानस्पतिक खाद्य-द्रव्यों में, ऐसे कोई द्रव्य विद्यमान होते हैं कि जिनकी सहायता से खाद्य-पदार्थ शरीर की पुष्टि और विकास भली-भांति कर सकते हैं। यद्यपि ये प्राणियों के शरीर में पाये जाते हैं तो भी वहां ये वनस्पति से ही आते हैं ऐसी शास्त्रज्ञों की राय है। इन द्रव्यों को जीव-द्रव्य (Vitamine) कहते हैं। प्राकृत खाद्यपदार्थों में ये थोड़ी लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से पर्याप्त राशि में पाये जाते हैं, और शरीर के विकास तथा पुष्टि के लिये आवश्यक हैं। किस प्रकार इनसे यह कार्य होता है इसके बारे में कोई निश्चित उत्तर नहीं है, तथापि ये योगवाही (Catalyst) होकर यह कार्य करते होंगे। ये अभी तक विशुद्ध अवस्था में खाद्य-द्रव्यों से विभक्त नहीं किये गये हैं! इनकी रासायनिक घटना भी अभी तक निश्चित नहीं हुई है। ये खाद्य-पदार्थों के बासी अवस्था में, पर्युषित अवस्था में, खूब जलाने के बाद नष्ट हो जाते हैं। अभी तक पांच या छः प्रकार के जीव-द्रव्यों का पता लगा है, तथापि इनके और भी प्रकार मिलने की संभावना है।

जीव-द्रव्य 'ए'—(Vitamine A)—बाल्यावस्था में शरीर की वृद्धि के लिये यह द्रव्य विशेष आवश्यक है। मछली का तेल (Cod liver oil), ताजा मक्खन, ताजा दूध, अंडा और हरे साग-सब्जी में यह विशेष करके पाया जाता है। प्राणिज स्नेह-द्रव्यों में यह सामान्यतः रहता है तथापि वानस्पतिक स्नेह-द्रव्यों में नहीं रहता। हरे साग-सब्जीयों में से गोभी, मूला, रतालू, गृंजन इत्यादि में यह पाया जाता है। मामूली तौर पर पकाने से इसकी राशि नष्ट नहीं होती।

जीव-द्रव्य 'बी'—(Vitamine B or water Soluble B) यह वनस्पतियों के कंद, मूल, स्कंध, फल और बीज में तथा एकदल धान्य (Cereals) के अंकुर में (Germ or embryo) तथा उसके भूसी में और द्विदलधान्यों के बीज में होता है, इनके सिवा मुर्गी के अंडे और यीस्ट (Yeast) में भी यह मिलता है। यह द्रव्य नाडी-शोथ प्रबंधक (Anti—neuritic) है, और इसके कमी से वातबलासक (Beri—Beri) नामक रोग पैदा होता है।

यह द्रव्य जल में घुलता है, दूसरे जीव द्रव्यों की अपेक्षा यह अधिक स्थायी (Stable) है। १०० सेंटीग्रेड ऊष्णता से यह नष्ट नहीं होता है।

जीव-द्रव्य 'सी'—(Vitamine 'C' or water soluble 'C')—यह विशेष करके ताजे फलों में—यथा नींबू, नारंगी, टोमाटो इत्यादि—तथा फूलगोभी जैसे ताजे तरकारी में तथा प्याज, आलू, इत्यादि कंदों में मिलता है। नारंगी के रस में यह द्रव्य दूध से छ: गुणा होता है। एकदल और द्विदल धान्य के अंकुरावस्था में यह अंकुर में मिलता है। ये धान्य अंकुरितावस्था में खाने की जो प्रथा हिंदू लोग में है यह विशेष फायदेमंद है। यह स्कर्वी प्रतिषेध (Anti—Scorbutic) है। इसके कमी से स्कर्व्ही नामक रोग होता है।

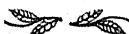
जीवद्रव्य 'डी'—Vitamine D or Fatsobule D—जिन द्रव्यों में जीव-द्रव्य 'ए' पाया जाता है, उनमें यह भी पाया जाता है। यह अस्थिवक्रता-प्रतिषेधक (Anti—rachitic) है। जीव-द्रव्य 'ए' की अपेक्षा यह अधिक स्थायी है। जिन द्रव्यों में यह जीव-द्रव्य

का अभाव है उनमें अल्ट्राव्हायोलेट किरणों की सहायता से यह द्रव्य उत्पन्न हो सकता है।

जीव-द्रव्य 'ई'—Vitamine E or Fat soluble E—यह द्रव्य गेहूँ के अंकुर के तेल में (Wheat germ oil) बहुतायत से पाया जाता है। इसके अलावा वानस्पतिक तैल में तथा एकदल धान्यों के अंकुर में, तथा वनस्पतियों के पत्रों में थोड़ा सा मिलता है। दूध और कॉडलिव्हर तेल में भी यह सुक्ष्मांश में पाया जाता है। जीव-द्रव्य 'ए' और 'डी' की अपेक्षा यह द्रव्य अधिक स्थायी है। उत्पादन की क्रिया में यह विशेष सहायभूत होता है, इसलिये इसको षंढता प्रतिषेधक (Anti sterility) कहते हैं।

उपरोक्त इन द्रव्यों के विवेचन से यह स्पष्ट है कि स्वास्थरक्षा के लिये न केवल प्रोटीन इत्यादि पंचमहाभूतात्मक खाद्य-द्रव्यों की जरूरत है बल्कि जिनमें उपरोक्त जीव-द्रव्य पाये जाते हैं ऐसे खाद्य-द्रव्यों की जरूरत है, नहीं तो नाना प्रकार के अभाव दर्शक (Difficiency diseases) रोग पैदा होते हैं।

अब तक खाद्यद्रव्यों का विवरण रासायनिक दृष्टि से हो चुका। तथापि केवल रासायनिक विवरण से प्रकृति में जो खाद्यद्रव्य पाए जाते हैं उनके सेवन से शरीर में क्या लाभ और हानि होती है यह समझने में कठिनाई होती है। इसलिए इसके आगे इन द्रव्यों का विवरण द्रव्यवर्ग के अनुसार किया जायगा ताकि स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका सेवन लाभकारक या हानिकारक हो यह आसानी से समझ सकें।



सप्तम अध्याय

दुग्धवर्ग

तत्वनेकौषधिरसप्रसादः क्षीरतां गतः ।
सर्वप्राण भृतां तस्मात् सात्म्यं क्षीरमि होच्यते ॥सुश्रुत॥
व्याध्यौषधाध्वभाष्य स्त्री लंघनातपकर्मभिः ।
क्षीणे वृद्धे च बाले च पयः पथ्यं यथाऽमृतम् ॥वाग्भट॥

खाद्य-द्रव्यों में दूध एक ऐसा पदार्थ है कि जिसका मुकाबला दूसरे किसी खाद्य-द्रव्यों से हरगिज़ नहीं हो सकता। इसका एक मात्र कारण यह है कि हमारे खाद्य-द्रव्यों में जिन-जिन उपादानों की आवश्यकता है वे सब दूध में विद्यमान हैं और ऐसे प्रमाण में होते हैं कि यदि अधिक नहीं तो कुछ समय तक केवल दूध पीकर ही जीवित रहना शक्य है। ऐसे रहने से स्वास्थ्य किसी प्रकार बिगड़ता नहीं, बल्कि सुधरता है। बाल्यावस्था के प्रथम २–३ बरस तक तो दूध ही जीवन का आधार है। बाल्यसमवृद्धावस्था में, थके-मांदे अवस्था में, रोगावस्था में दूध ही फ़ायदेमन्द है। इन कारणों से दूध को पूर्णाहार कहते हैं।

दूध के सामान्य गुण-धर्म और घटना।

शुद्ध दूध कांच के बर्तन में रखने से अपार दर्शक और रंग में श्वेत मालूम होता है और इसके तली पर कोई प्रक्षेप नहीं बैठता। उसका स्वाद मीठा होकर किसी तरह का गंध नहीं आता। थोड़ी देर तक रखने से उसके उपरिले भाग में मलाई आती है जो कि प्रतिशत १२ होना चाहिये। ताजा दूध साधारणतया दोनों प्रकार की प्रतिक्रिया

(Amphoteric Reaction) देता है, यानि लाल लिटमस नीला और नीला लाल हो जाता है। कभी-कभी यह प्रति-क्रिया रहित (Nerutral) भी होता है। इसकी प्रति-क्रिया यदि प्रबल अम्ल हो तो जानना चाहिये कि जीवाणुओं की क्रिया से उसमें ल्याक्टिक या ब्युट्रिक असीड तयार हो गया है। यदि गौ बीमार या सद्य-प्रसूता हो तो दूध की प्रतिक्रिया अलक-लाईन होती है। ताजे दूध के जो सामान्य गुण-धर्म ऊपर बतलाये हैं उसके खिलाफ यदि दूध में गुण-धर्म हों तो उस दूध को खराब समझ कर नहीं सेवन करना चाहिये।

अनिष्टगधमम्लं च विवर्णं विरसंचयत्।
वर्ज्यं सलवणं क्षीरं यच्चविग्रथितं भवेत् ॥सुश्रुत॥

दूध की गुरुता सामान्यतया १०२७ से १०३४ तक होती है। पानी डालने से भी यह कम हो जाती। ६० फारनहीट के ऊपर प्रति १० फा० उष्णता वृद्धि के पीछे गुरुता एक औंस कम हुआ करती है।

दूध की गुरुता का मापन क्षीर-मापक (Lactometer) नामक यन्त्र के सहायता से होता है। दूध में यदि निखालिस पानी की मिलावट हो तो इस यन्त्र से पता लगता है, परन्तु यदि उसमें चीनी इत्यादि डाल दिया जाय तो मिलावट का पता नहीं चलता। इसलिये इस यंत्र से, गाँवों और देहातों में जहाँ इस युक्ति से ग्वाले नावाकिफ होते हैं, विश्वास-पूर्वक काम लिया जाता है; परंतु शहरों में होशियार ग्वाले चीनी इत्यादि मिलाने की चालाकी करके इस यंत्र के परीक्षा को झूठा सिद्ध कर देते हैं। तस्मात्, दूध के साथ पानी का मिलावट जानने के लिये दूध को किसी शुभ्र बर्तन में रखना जरूरी है जिससे जहाँ दूध और बर्तन सटे

रहते हैं, पृष्ठ भाग के नजदीक नीली लकीर नंगी आँखों से दिखाई पड़ती। दूध में चीनी का मिलावट जानने के लिये १० सी० सी० दूध में हायड्रो क्लोरिक असीड के कुछ बुंद और रिसार्सिन डालने से दूध का रंग गुलाबी बन जाता है। स्टार्च की मिलावट जानने के लिये दूध में आयोडिन का द्रव डालने से दूध का रंग नीला हो जाता है।

आजकल बजार में ऐसा दूध मिलना शुरू हो गया है कि उसको दूध कहना दूध जैसे अमृत समान पदार्थ का अपमान करना है। वह इतना निकृष्ट और हानिकारक होता है कि पीने की अपेक्षा न पीना ही बेहतर है। कहीं मक्खन निकाल कर निस्सार दूध रखा जाता है, तो कहीं दूध के नाम पर सफेत पानी मिलता है। दूध में मिलावट करने की प्रथा चाहे देहातों में जाओ चाहे शहरो में जाओ इतनी बढ़ गयी है कि शुद्ध दूध मिलना लगभग असंभव हो गया है। सबसे अधिक मिलावट पानी की होती है। इस मिलावट को छिपाने के लिये उसमें बताशे चीनी इत्यादि मिला देते हैं। दूध की मलाई उतार कर अपेक्षित गुरुता बनाने के लिए उसमें पानी मिला देते हैं। दूध को गाढ़ा बनवाने के लिए उसमें स्टार्च, आटा, गोंद इत्यादि मिलाए जाते हैं। अतएव विशुद्ध दूध प्राप्ति का सब से उत्तम उपाय यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने घर में गाय-भैंस पाले तथापि सब लोग दुधार जानवर रखने में समर्थ नहीं होते, अतएव उन्हें यथासंभव अपने सामने दुहाये हुए स्वस्थ पशु के दूधप्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये।

दूध की घटना—सामान्यतः दूध में कुल भार के ३ प्र० श० प्रोटीन होते हैं। ये क्यासिनोजन (Caseinogen), ल्याक्टयाल्ब्यूलिन

(Lactalbumin) और ल्याक्टो ग्लोब्यूलिन (Lacto globulin) हैं। न्यूक्लिन (Nuclein) फायब्रिन (Fibrin) और म्यूसिन (Mucin) का भी कुछ अंश पाया जाता है। इनमें क्यासिनोजेन प्रधान है, और क्यालसीअम फास्फेट की सहायता से दूध में विद्रुत रहता है।

अम्ल के प्रभाव से यह प्रक्षेपित होता है, उष्णता का असर उस पर नहीं होता। ल्याक्टाल्ब्यूमिन दूध में थोड़े तादाद में होता है, तथापि सद्यःप्रसूता गौ के दूध में (Colostrum) बहुतायत से रहता है। इसमें गंधक होकर फास्फरस नहीं होता। उष्णता के प्रभाव से यह प्रक्षेपित होता है परंतु अम्ल का प्रभाव इस पर नहीं होता।

दूध के शर्कराजातीय पदार्थ को दुग्ध शर्करा (Milksugar or Lactose, $C_{12} H_{22} O_{11}$) कहते हैं, और प्रतिशत यह ५–६ होता है निसर्ग में दूसरे किसी खाद्य-द्रव्य में दुग्ध शर्करा नहीं पायी जाती। मेद-द्रव्य दूध में ३$\frac{1}{2}$ से ६ प्रतिशत होता है। यह इतने सूक्ष्म कण के रूप में फैला रहता है कि दूध के एक बुंद में करीब १'५००००० पंधरालक्ष मेद के छोटे छोटे कण होते हैं। मेद की इतनी सूक्ष्मता होने के कारण दूध का मेद पचने में बिलकुल हलका रहता है।

दूध में क्यालसीअम, पोटयासिअम, सोडिअम के फास्फेट होते हैं। सचमुच शरीर संवर्धन के लिये जितने प्रकार के क्षार की आवश्यकता होती है, सिवा लोहे के क्षार के, सर्व प्रकार के क्षार दूध में पर्याप्त राशि में होते हैं। लोह भी दूध में होता है परंतु उसकी राशि इतनी सूक्ष्म होती है कि लोह के ह्रास-पूर्ति के लिए जितनी लोह की रोजाना जरूरत पड़ती है उसके लिये ३ सेर दूध (५ पाइंट) सेवन करना जरूर पड़ेगा।

इनके अलावा दूध में जीवद्रव्य ए० बी० सी० भी विद्यमान रहते हैं। इनमें प्रथम दो दूध रखने से या गरम करने से नष्ट नहीं होते। तीसरा नष्ट हो जाता है। वह केवल ताजे दूध में ही होता है।

दुधार प्राणि और उनके दूध की घटना

दूध	घनता	कुलठोस	क्यासिन	अल्ब्यूमिन	मेद	कार्बोहाइड्रेट	क्षार	पानी
घोड़ी का दूध	१०२७	१२.६०	१.०३	१.२६	३.८१	६.२०	०.३०	८७.४०
गौ का दूध	१०३२	१८.८३	३.०२	०.५३	३.६९	४.८८	०.७१	८७.१७
भैंस का दूध	१०३२	१८.५९	५.८५	०.२५	७.४७	४.१५	०.८७	८१.४९
बकरी का दूध	१०३२	१४.२९	३.२०	१.०९	४.७८	४.४६	०.७६	८५.७१
गदहे का दूध	१०२३.३५	१०.३६	०.६७	१.५५	१.६४	५.९९	०.५१	८९.६४
मनुष्य का दूध	१०३५	९.२२	१.२४	०.७५	१.२७	५.६७	०.३५	९०.७८

दूध की दुष्टि

दूध जैसा विशुद्धावस्था में अमृत समान है, वैसा ही दूषितावस्था में विष समान है। इसलिये दूध के दूषित होने के कारण नीचे दिये गये हैं :

१—अस्वस्थ बीमार पशू का दूध स्वभावतः ही दूषित रहता है।

२—गलीज स्तन से निकला हुआ दूध दूषित रहता है।

३—गलीज हाथों से निकला हुवा दूध दूषित रहता है।

४—दूध निकालनेवाला मनुष्य बीमार हो तो दूध दूषित होने की संभावना रहती है।

५—खराब बर्तन में रखा हुआ या निकाला हुआ दूषित रहता है।

६—दूध निकाल ने के बाद बहुत देर तक खुला रखने से दूषित हो जाता है।

७—दूध में पानी, आटा इत्यादिक की जो मिलावट होती है उससे दूध दूषित होता है—

८—दूध बिना संरक्षण करने से आप से आप खराब होता है।

दूध में पाये जानेवाले जीवाणु

सामान्यतः स्तन के भीतर दूध जीवाणु रहित होता है तथा उसमें किंचित जीवाणु नाशक शक्ति भी रहती है। ताजे निकाले हुए दूध में सामान्यतः प्रति सी० सी० १०० से ५०० जीवाणु पाये जाते हैं, तथापि भारतवर्ष में ग्वाल लोगों की दूध निकालने की, रखने की गलीज पद्धति से

दूध के एक सी० सी० में करोड़ों जीवाणु पाये जाते हैं। दूध में जो रोगोत्पादक जीवाणु पाये जाते हैं उनके तीन उत्पत्ति स्थान हैं।

१—दुधार जानवर से ये जीवाणु (StreptoCocci, Staphylo Cocci, Tubercle bacilli, Anthrax bacilli, Foot and mouth disease Germs, and Actinomyces)

२—मल-मूत्रादि से स्तन-दूषित होने के कारण मलवासी जीवाणु।

३—मनुष्य के अस्वच्छता से दूध में प्रविष्ट होनेवाले ये जीवाणु हैं। आंत्रिकज्वर, गलग्रह (Diptheria), विषूचिका।

दूध से उत्पन्न होनेवाले रोग

जिस प्रकार मनुष्य दूध पर अच्छी तरह पुष्ट होते हैं उसी प्रकार जीवाणु भी यदि दूध में प्रविष्ट हो तो भली भांति पुष्ट होकर वृद्धिंगत होते हैं। इसलिये दूध से उत्पन्न होनेवाले रोगों में ज्यादा रोग जीवाणु जन्य ही हुआ करते हैं, और उनका स्वरूप हमेशा भयानक होता है।

१—खट्टे दूध में ल्याक्टिक असीड जीवाणु रहता है, और ऐसा खराब दूध पीने से बच्चों में वमन, आध्मान, अतिसार पैदा होता है।

२—यदि उसमें ल्याक्टिक ॲसिड जीवाणु के सिवा Oidium albicans जीवाणु हो तो मुखपाक (thrush) भी होता है।

३—यदि उसमें गौ के स्तन से मवाद युक्त स्राव मिला हुआ हो तो आमाशय दाह पैदा होता है।

४—यदि खुला रखने के कारण उसमें जहरीले वायुरूप पदार्थ घुले हुए हों तो दस्त होते हैं।

५—क्षय रोगी गौ से क्षयरोग होता है।

६—खराब पानी से दूषित जल द्वारा आंत्रिकज्वर, प्यारा टायफॉइड ज्वर (Paratyphoid Fever), विषूचिका, गलग्रह इत्यादि रोग पैदा होते हैं।

७—मायक्रो कोकस मेलिटेन्सिस (Micrococcus Melitensis) नामक जीवाणु से दूषित बकरी के दूध से माल्टाज्वर (Malta fever) पैदा होता है।

दूषित दुग्धोत्पन्न रोगों की विशेषता।

१—इन रोगों का प्रारंभ एकदम होता है और दूध बंद करते ही वे एकदम बंद हो जाते हैं। अन्य रीति से उत्पन्न हुए रोगों के लिये यह नियम नहीं होता।

२—प्रायः रोग उन परिवारों में होता है जिनमें दूषित दूध का प्रचार है।

३—गरीब लोग दूध कम लेने के कारण दूषित दुग्धोत्पन्न रोग गरीबों की अपेक्षा धनवानों में ज्यादा हुआ करते हैं।

४—एक ही काल में बहुत लोग बीमार होते हैं।

५—जीवाणुओं की तीव्रता के कारण रोग की चयावस्था (Incubation Period) बहुत थोड़ी होती है।

दूध से उत्पन्न होनेवाले रोगों से बचने के उपाय

१—रोगी पशु तथा व्रणित स्तनवाले पशुओं का दूध नहीं पीना चाहिये।

२—दूध दोहने के पहिले स्तन् खूब साफ पानी से धोना चाहिये।

३—दूध दोहने के पहिले हाथों को साफ धोकर साफ कपड़े पहनना चाहिये ताकि दुहते वक्त खराब कपड़े से हाथ फिर दूषित न हो जाय।

४—दूध दोहनेवाला तथा दूध को घर घर पहुँचानेवाला स्वस्थ विशेष करके संक्रामक रोग से अपीड़ित होना चाहिये तथा दूसरे संक्रामक रोग से पीड़ित मनुष्य की सेवा शुश्रुषा नहीं करना चाहिये।

५—क्षीरपात्र दूध निकालने के पहिले अच्छी तरह से खौलाये हुए जल से धोना चाहिये, और दूध निकालने के बाद दूध को ढक्कन से ढककर रखना चाहिये।

६—दूध निकालते समय दुधार पशू का पुच्छ बाँधकर रखना चाहिये, नहीं तो पुच्छ के हिलाने से दूध में मल-मूत्र के छींटे उड़ने की संभावना होती है।

७—दूध रखने की जगह खुली हवादार और मोरी परनाले से अलग होना चाहिये, क्योंकि दूध में खराब हवा को सोख लेने की शक्ति है। दूध रखने के स्थान में हरगिज कोई भी नहीं सोना चाहिये। उस स्थान को हमेशा अच्छी तरह से धुलवा कर गर्द-गुबार से रहित रखना चाहिये।

८—यद्यपि उबालने से दूध का कुछ पौष्टिक भाग नष्ट हो जाता है, तथापि जीवाणुजन्य रोगों से बचने के लिये यही सर्वोत्कृष्ट और निश्चित उपाय है। इसलिये बजारू दूध हमेशा उबाल कर पीना चाहिए।

९—दुधार पशुओं की गोशाला खुली और हवादार होना चाहिये और वहाँ की फर्श सीमेंट या पत्थर की होना चाहिये।

१०—नगर-सभा की ओर से खराब दूध बेचना कानूनन बंद करना

चाहिये, तथा दूध बिक्री के लिये ग्वालों को नगर सभा की ओर से अनुज्ञा (liscence) की जरूरत होनी चाहिये ।

दूध का संरक्षण

दूध को खट्टा होने से या विघटित होने से बचाने के लिये निम्न लिखित विधियों का उपयोग किया जाता है ।

१—उत्क्वथन ।

२—निर्जंतुकरण ।

३—पाश्चरायझेशन ।

४—शुष्किकरण ।

५—सांद्रीकरण ।

६—जंतुघ्नद्रव्यों का उपयोग ।

१—उत्क्वथन—दूध को रखने का यह सामान्य तरीका है, जिस से दूध १२ से २४ घन्टे तक ठीक रह सकता है । दूध में उबालने से नीचे दिये फर्क हो जाते हैं ।

१—दूध में घुली हुई वायु निकल जाने से शायद दूध की रुचि बदल जाती है ।

२—दुग्धशर्करे का कुछ भाग जल जाने से दूध का रंग कुछ भूरा हो जाता है ।

३—उसके प्रोटीन विघटित हो जाते हैं ।

४—फास्फरस जो पहिले सेंद्रिय अवस्था में (organic) था, बदलकर निरिंद्रिय अवस्था में परिवर्तित हो जाता है ।

५—क्यालसिअम और म्याग्नेसिअम के क्षार प्रक्षेपित हो जाते हैं।

६—दूध के फर्मेंट (Ferment) नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रज्ञों की यह राय है कि दूध में सात प्रकारके फर्मेंट हैं, जोकि दूध के भिन्न २ घटकों को पचाने में सहायभूत होते हैं। उबालने से ये नष्ट हो जाते हैं, और ऐसा उबाला हुआ दूध का सेवन स्कर्व्ही नामक रोग पैदा करता है।

७—यद्यपि दूध उबालने से उसमें कई दोष उत्पन्न होते हैं, तथापि सब से विशेष फायदा यह है कि दूध में रहनेवाले कुल जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

२—निर्जंतुकरण—(Sterilization)—इस विधि में दूध १०० सेंटीग्रेट उष्णता तक १५ मिनिट तपाते हैं और उसके बाद स्वच्छ हवाबंद (Hermatically Sealed) बर्तन में रखते हैं।

३—पाश्चरकी विधि—(Pasteurization)—इस विधि के दो प्रकार हैं। प्रथम प्रकार को 'होल्डर' पद्धति कहते हैं। इसमें दूध को ३० मिनिट १५० फा० तापतक गर्माते हैं और फिर फौरन ५५ फा० तक ठण्डा करते हैं। यह पद्धति इंगलैंड के मिनिस्ट्री ऑफ हेल्थके पसंद की है, क्योंकि इसविधि से रोगोत्पादक जीवाणु नष्ट हो जाते है। यह विधि यदि यथाशास्त्र प्रयुक्त किया जाय तो दूध का रक्षण भली भाँति होकर दूधके पौष्टिक भाग में कुछ फरक नहीं होता। इसविधि से रक्षित दूध तीन चार दिन से अधिक दिन तक नहीं रहता है, क्योंकि दूध में रहनेवाले पूतिजनक (Putre factive) जीवाणु इस विधि में नष्ट नहीं होते। दूसरे पद्धति को फ्लयाश (Flash) कहते हैं। इसमें दूध कुछ

मिनिट तक १५० फा० से भी ज्यादा उष्णता तक गरम किया जाता है। यह पद्धति समाधान कारक और विश्वसनीय नहीं है।

४—शुष्कीकरण—इसविधि में दूध का जलीय अंश तप्तावेलन की सहायता से सूखा बनाकर फिर चलनी द्वारा बिलकुल महीन किया जाता है, और डिब्बे में भरकर भेज दिया जाता है। वख्त जरूरत पर इसमें पानी डालकर बनावटी दूध तयार हो सकता है, और विशेष करके प्रवास के लिये बहुत मुफीद होता है। इसमें हानि यह है कि जीवद्रव्य का कुछ भाग नष्ट हो जाता है।

सांद्रीकरण—Condensation—बंद बर्तन में वायुभार कम कर के (under diminished pressure) दूध ५५ से ६५ सें० तक गरम किया जाता है जिससे उसका जलीय अंश कम होकर दूध तिहाई हो जाय। फिर उसमें शक्कर मिलाकर या न मिलाकर हवा बंद निर्जन्तुक डिब्बे में बंद करते हैं। ऐसे दूध को Condensed Milk कहते। भारत में इसकी आमदनी दिन ब दिन बढ रही है। इसका डिबा खोलने के बाद जल्दी खतम करना चाहिये, नहीं तो दूध खराब होने की संभावना होती है। ये दूध पूर्ण दूध से या मलाई निकाले हुए (Skimmed) दूध से तयार किया जाता है। दूसरे प्रकार से तयार किया हुआ दूध बच्चों को नहीं देना चाहिये क्योंकि उसके सेवन से बच्चों का स्वास्थ में बिघाड होकर अस्थिवक्रता (Rickets) जैसे रोग पैदा होते हैं।

५—जंतुघ्न द्रव्यों का उपयोग—युरोपीय देश में दूधके रक्षण के लिये स्यालि स्यालिक ॲसिड, टंकणक्षार, सलफरस ॲसिड फार्मालिन

इत्यादि जंतुघ्न द्रव्यों का उपयोग किया जाता है । वास्तव में इनका प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्वास्थ्य के लिये ये हानिकारक हैं । दूध में हायड्रोजन पेराक्साईड (H_2O_2) डालने की भी प्रथा है, लेकिन इससे जीव-द्रव्य भी नष्ट हो जाते हैं ।

दुग्ध सेवन संबंधी कुछ नियम

शाकाहारी लोगों को आहार में पौष्टिकता की दृष्टि से दुग्ध एक आवश्यक खाद्य है । पीने के लिये सबसे उत्कृष्ट और पौष्टिक धारोष्ण दूध है ।

पयोभिष्यंदिगुर्वामं युक्त्या श्रृतमतोन्यथा ।
भवेद्गरीयोऽतिश्रृतं धारोष्णममृतोपमम् ॥ अष्टांगहृदय ॥

यह दूध अपने स्वच्छ हाथों से स्वच्छ बर्तन में स्वस्थ गौ के स्वच्छ स्तनों से निकालकर सांद्र स्वच्छ कपड़े से छानकर जब तक उसकी उष्णता शरीर की उष्णता के बराबर है तब तक पीना चाहिये । ऐसा नहीं मिले तो कच्चा ठण्डा दूध नहीं पीना चाहिये । दूध अच्छी तरह से उबाल कर पाना ठीक है । दूध हमेशा प्रातःकाल या सोने के पहिले पीना चाहिये ।

निशांतेच पिवेद्वारी वासरांते पिवेत्पयः ।

जहाँ तक हो सके भोजन के साथ नहीं पीना चाहिये, क्योंकि वह भोजन में बाधा डालता है ।

दूध पचने में सबसे हलका तथा सब से ज्यादा पौष्टिक है । उसका सारभूत भाग पचन होने में तथा मलस्वरूप भाग शरीर के बाहर निकलवाने में शरीर को कम से कम कष्ट उठाना पड़ता है, तथा शरीर के सेलों का ह्रास भी कम होता है । दूध आंतों में जंतुघ्न द्रव्य का तथा विषनाशन (Anti-toxic) का काम करता है । पाँच दिन यदि केवल

दुग्धाहार का सेवन किया जाय तो आँतों के जीवाणु प्रति मि० मि ६७००० से २५०० तक कम हो जाते हैं। यह क्रिया विशेष करके दूध में जो दुग्धशर्करा (Lactose) होती है, उससे होती है। यह शर्करा आँतों में ल्याक्टिक तथा सक्सीनिक असिड में परिवर्तित (Lactic and Succinic) होकर उनकी सहायता से आँतों के जीवाणुनाशन का काम करती है। खाद्य-द्रव्यों में केवल दूध ही ऐसा पदार्थ है जो आँतों में जंतुनाशन का काम करता है।

दूध यद्यपि तरलावस्था में होता है तथापि आमाशय में पहुँचते ही वह दही-सा जम जाता है। दूध का हलका या भारीपन इस जमने की क्रिया पर निर्भर रहता है। सामान्यत: दूध का एक ग्लास २ घंटे में आमाशय से आँतों में जाता है। यह अवधि दूध की अवस्था पर आश्रित रहती है।

एक पाइंट (२० औंस)	कच्चा दूध	२½	घंटे में बाहर जाता है।
,,	मलाई रहित दूध	३½	,,
,,	खट्टा दूध (तक्र)	३	,,
,,	उबाला हुआ दूध	४	,,

सामान्यतः पीने के लिये गौ के दूध का प्रयोग किया जाता है। तथापि स्त्री के दूध की अपेक्षा उसमें क्यासिन और क्षार ज्यादा होते हैं, और दुग्धशर्करा कम होती है। दूध के जम जाने की तीव्रता दूध में विद्यमान रहनेवाले क्यासीन और खटिक क्षार पर निर्भर रहती है, और गौ के दूध में ये अधिक परिमाण में होने के कारण गौ का दूध आमाशय में जाकर कठिनावस्था में जम जाता है और पचने में कुछ भारी पड़ता है। बच्चों को माता के दूध के अभाव में गौ का दूध देते समय इस बात पर

जरूर ध्यान देकर गौ का दूध माता के दूध के बराबर गुण में तयार करके देना चाहिये।

स्तन्याभावे पय छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥ वाग्भट ॥

ऐसा करने के लिये गौ के दूध में बराबर पानी तथा शर्करा मिलाकर देना चाहिये। जौ या चूने का पानी तथा सोडिअम सायट्रेट दूध में डालने से यह जमने की क्रिया बहुत विरल हो जाती है।

गो-दुग्ध का संघटन गौ की जाति, आयु, खाना, और प्रसूति के बाद की अवधि इत्यादि पर आश्रित रहता है।

गौ के सिवा भैंस का भी दूध पीने के काम में आता है, तथापि उस में चिकनाई ज्यादा रहने के कारण पचने में जरा भारी होता है। गधी के दूध की घटना स्त्री के दूध के समान होने के कारण माता के दूध के अभाव में बच्चों को देना ठीक है। बकरी के दूध का भी प्रयोग किया जाता है।

दूध से बननेवाले पदार्थ

मलाई—दूध कुछ देर तक पड़ने के बाद उसके पृष्ठ भाग पर जो स्निग्ध भाग जम जाता है उसको मलाई कहते हैं। इसको यन्त्र द्वारा जल्दी (Centrifugal Machine) अलग कर सकते हैं। घर में तयार की हुई मलाई में स्नेह का भाग १५–३० तक और यन्त्र द्वारा तयार किये हुए मलाई में ३०–५० तक प्र० श० स्नेह होता है। स्नेह के अलावा इसमें प्रोटीन, क्षार, शर्करा इत्यादि भी होते हैं। इसका रंग पीला सफेद होता है। मलाई निकालने के बाद जो क्षीर का भाग रहता

है उसको संतानिकारहित दुग्ध (Skimmed milk) कहते हैं। अग्नि-मांद्य तथा बच्चों के लिये यह फायदेमंद होता है।

दधि—यह दूध पर ल्याक्टिक असिड तयार करनेवाले जीवाणुओं की (Lactic fermenting microbes) क्रिया करने से तयार होता है। ये जीवाणु दूध में क्षोभ पैदा करके दुग्ध-शर्करा का कुछ भाग ल्याक्टिक अम्ल में परिवर्तित कर डालती हैं, बाकी दूध और दही की घटना एक ही रहती है।

	ताजा दूध	दही
क्यासिन	३ · ५५	३ · ५५
मेद	३ · ७०	३ · ७०
दुग्ध शर्करा	४ · ८८	३ · ९ से ४ · ५
क्षार	० · ७१	० · ७१
जल	८७ · १७	८७ · १७
ल्याक्टिक अँसिड	० · ०	करीब ० · ६०

दधि तयार करने की विधि यह है कि दूध को अच्छी तरह से उबाल कर ठंडा करके उसमें कुछ मट्ठा मिला देना और फिर कई घंटों तक उसको पड़ा रहने देना। पौष्टिकता की दृष्टि से दही दूध के समान है, तथापि उसमें दूध की अपेक्षा कुछ विशेष गुण-धर्म है।

१—दही में क्षीराम्ल जीवाणु विद्यमान होने के कारण दूसरे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, इसलिये दूषित दूध के समान दही से विशेष प्रकार की हानि नहीं हो सकती।

२—दूध जैसा दही महास्रोत (Alimentary Canal) में

आहार के हानिकारक विघटन को रोकता है, तथापि दूध से दही की क्रिया विशेष होती है। इसलिये दैनिक आहार में दही का सेवन फायदेमंद है।

३—दूध अन्न के साथ लेना विशेष लाभ दायक नहीं तथापि दही अन्न के साथ ले सकते है।

४—मेचनीकाफ (MetchniKoff) नामक शास्त्रज्ञ ने परीक्षा द्वारा यह बतलाया है कि यथाविधि दही सेवन करने से आतों में रहनेवाले जीवाणु (Proteolytic Bacilli) नष्ट होजाते हैं तथा उनका विष (Toxin) निर्विष हो जाता है और अनेक प्रकार के रोगों से तथा बुढ़ापे से शरीर की रक्षा होती रहती है। इसका कारण यह है कि मनुष्य के आतों में अनिष्टकारी जीवाणु मौजूद रहते हैं और जैसे जैसे उमर बढ़ती हैं वैसे वैसे उनकी संख्या भी बढ़कर उनके शरीर से, निकलनेवाले विष (Toxin) द्रव्य को भी बढ़ाती है। यही विषद्रव्य शरीर में जल्दी बुढ़ापा लाने का एक प्रधान कारण है। दही सेवन करने से इन जीवाणुओं का तथा विष का नाश हो जाता है।

स्वस्थ व्यक्ति के लिये दही उपकाकर है, तथापि जिस भांति दही खाने का प्रचार दिन बदिन बढ़ रहा है उसे देखकर जान पड़ता है कि यथा-विधि दधि सेवन का व्यवहार क्या है उसपर अवश्य ध्यान रखना जरूरी है।

शरद् ग्रीष्मवसंतेषु प्रायशो दधि गर्हितम्।
रक्तपित्त कफोत्थेषु विकारेष्वहितञ्चं तत्॥
न नक्तं दधिभुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्।

नामुग्द सूपं ना क्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥चरक संहिता॥

मक्खन—यह दही या मलाई को विलोडकर प्राप्त किया जाता है। विलोडने से इनके मेदोगोलक इकट्टे हो जाते हैं और क्यासीन क्षीररस तथा पानी के कुछ भाग को अपने में लेता हैं। इसका औसतन संघटन यह है, १२ से १५ प्रतिशत पानी, १ से ३ प्र० श० क्यासिन, ७८ से ९४ प्र० श० स्नेह भाग और० से ७ तक क्षार। इसके सिवा इसमें जीवद्रव्य भी मौजूद होता है। इसका रक्षण करने के लिये इसको पानी में रख-देते हैं या नमक डालते हैं। खाद्यद्रव्यों में मक्खन बहुत हलका पदार्थ है तथा उसका कुल भाग आतों में जज्ब होजाता है। इसलिये अग्निमांद्य, क्षय, मधुमेह इत्यादि रोगों में विशेष करके बच्चों को उपकारी है।

नवनीतं हिमं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत्।
संग्राहि वातपित्तार्शः क्षयेष्वर्दितकासजित्॥
तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतंशिशोः ॥योगरत्नाकर॥

मक्खन में सामान्यतः पानी की मिलावट रहती है। उत्तम मक्खन में १५ प्रतिशत से ज्यादा पानी नहीं होना चाहिये। कभी कभी नमक, स्टार्च या टंकणाम्ल की भी मिलावट रहती है, तथापि सर्व प्रधान मिला-वट मार्गराइन (Margarine) नामक मेदद्रव्य की होती है। यह द्रव्य प्राणिज या वनस्पतिज मेदद्रव्य से बनाया जाता है। प्राणिज द्रव्य से बने मार्गराईन में जीवद्रव्य होता है, इसलिये मक्खन का बदला इससे कुछ हो सकता है। वनस्पतिज मार्गराइन में जीवद्रव्यए नहीं होता इसलिये मक्खन का कार्य इससे नहीं हो सकता। मार्गराइन और मक्खन में मुख्य भेद यह है कि प्रथम में

जलविद्राव्य उडनशील मेदसाम्ल ½ प्रतिशत होते हैं और मक्खन में प्रतिशत ८ होते हैं ।

घी—यह एक प्रकार का शुद्ध मक्खन ही है और मक्खन को गरम करके तयार किया जाता है । मिठाई बनाने में तथा खाने में इसका विशेष प्रयोग किया जाता है । गौ और भैंस दोनों के दूध से यह निकाला जाता है । गौ का पीला और भैंस का सफेद होता है । घी में १०० भाग मेद ही होता है ।

छाछ या मट्ठा—मट्ठा दही को मथानी द्वारा मथ कर तैयार किया जाता है, और रचनाभेदवश पांच प्रकार का होता है ।

ससरं निर्जलं घोलं, मथितंत्वसरोदकम् ।
तक्रपाद जलं प्रोक्तं मुदश्वि दर्धवारिकम् ॥
छछिकासार हीनास्यात् स्वच्छा प्रचुरवारिका॥भावप्रकाश.

यह बहुत पौष्टिक तथा पचने में हलका होता है, और आंतों की बीमारी में फायदेमंद है ।

दूध से बने हुए पदार्थों का घटनापत्रक

द्रव्य	प्रोटीन	फ्याट	कार्बो	क्षार	जल
दूध	४·०	३·७	४ ८	·७	८६·८
दधि	४ ७	३·५७	२·८	·६२	८७·८४
पनीर	२८·२	३१ ६	०·०	४·२	३६ ००
मक्खन	४ ०	८१ ०	० ०	२·५	१२ ५
घी	० ०	१००	०·०	०·०	० ०



अष्टम अध्याय

मांस वर्ग

नहि मांससमं किंचिदन्यद्देह बृहत्वकृत् ।
मांसाद् मासं मांसेन संभृतत्वाद्विशेषतः ॥ वाग्भट ॥

खाद्यद्रव्यों के प्राचीनकाल से ही शाकवर्ग और मांसवर्ग ऐसे दो बड़े विभाग माने गये हैं । तथापि उसमें मांस वर्ग को पुराण काल से प्राधान्य दिया गया है और इस कारण से इसका विवरण प्रथम करना ठीक है ।

तत्रापि प्राधान्यान्मांसवर्गस्य पूर्वं निर्देशः ॥ अरुणदत्तः ॥

शरीर की वृद्धि तथा–ह्रास की पूर्ति के लिये मांसवर्ग के खाद्य-द्रव्यों की विशेष जरूरत है । दूध एक प्राणीज पदार्थ है, तथापि उसकी गणना हिंदू लोग शाकवर्ग में और युरोपिअन लोग मांसवर्ग में करते हैं । इसका वर्णन हो चुका है । बाकी जो इस श्रेणी के खाद्य-द्रव्य है उनके ३ विभाग हैं । मांस, मछली और अंडे । इन खाद्य-द्रव्यों में मांसोत्पादक उपादन अधिक होते हैं तथापि कार्बोहाइड्रेट बहुत कम या शायद होते ही नहीं । इसलिये मांसाहार को पूर्णाहार नहीं कह सकते ।

इनकी संघटना—

द्रव्य	प्रोटीन	मेद	कार्बो	क्षार	पानी
बकरी का मांस	१७·११	५·७७	०·०	१·३३	७५·९९
मुर्गी	१६·७२	१·४२	०·०	१·३७	७६·२२

मछली	१६·०	५·०	०·०	१·०	७८·०
अंडा	१२·५५	१२·११	०·५३	१·१२	७३·४७

मांस

संसार के भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्राणियों का मांस खाया जाता है। भारतवर्ष में बकरी और भैंस का मांस खाया जाता है मांस में प्रोटीन, मेद और क्षार होते हैं, कार्बोहाइट्रेट नहीं होते। मांस में मायोसिन, मसल अल्ब्यूमिन और हीमोग्लोबिन ये प्रोटीन होते हैं। मृत्यु के बाद शरीर में जो कठिनता (Rigor mortis) आती है मायोसिन के जम जाने से होती है। तथापि कुछ देर के बाद अम्ल वहां तय्यार होकर मांस को मृदु तथा खुशबूदार बनाता है। इसलिये हमेशा यह कठिकता निकल जाने के बाद मृत पशुओं का मांस खाना चाहिये।

ये अम्ल कठिन परिश्रम करके जो पशु मरते हैं उनके मांस में भी विद्यमान रहते हैं, इसलिये शिकार करने के बाद जो पशु मारा जाता है उसके मांस में विशेष खुशबू रहती है।

मांस में जो संयोजक धातु (Connective tissue) होते हैं उनसे मांस पकाने के बाद जेल्याटिन (Jelatin) तय्यार हो जाता है। यह संयोजक धातु वृद्ध जानवरों के मांस में अधिक परिमाण में होने के कारण उनके मांस को अधिक समय तक पकाना पड़ता है।

मेद की राशि संयोजक धातुओं में होकर भिन्न भिन्न प्राणियों में भिन्न भिन्न होती है। मृत्यु के समय यह ठोस हो जाती है और उस समय उसमें स्टिरिन, पामीटिन ओलिन रहते हैं।

मांस के क्षार पोटयाशिअम क्लोराईड और फास्फेट हैं।

इन उपर्युक्त पदार्थों के अलावा मांस में ऐसे कुछ पदार्थ होते हैं जो मांसाहार की खुशबू बढ़ाते हैं, जायकेदार बनाते हैं तथा पाचन-शक्ति को उत्तेजित करते हैं। परंतु इनमें पोषक गुण बिलकुल नहीं होता।

मांस का पचन

खाद्य-द्रव्यों में मांस एक अत्यंत पौष्टिक द्रव्य है।

मांसं बृंहणं बलवर्धनम् ॥ चरक संहिता ॥

इसकी पौष्टिकता इतनी है कि कुल मांस का प्र० श० ८५ भाग सारभूत होकर आंतों में से जज्ब हो जाता है और केवल ५ प्र० श० भाग किट्ट स्वरूप होकर बाहर निकलता है। मांस की पचनीयता उसकी रसोई बनाने के तरीके पर आश्रित रहती है। लेसन नामक शास्त्रज्ञ ने प्रयोग द्वारा यह बतलाया है कि ३½ औंस मांस आमाशय से नीचे दी हुए अवधि में निकल जाता है।

कच्चामांस	२ घंटे
आधा उबाला	२½ ,,
पूर्ण उबाला	३ ,,
आधा भुना	३ ,,
पूर्ण भुना	४ ,,

इससे यह सिद्ध है कि पकाने से मांस पचने में भारी होता है। लेकिन उससे उसकी खुशबू बढती है, उसकी रंगत अच्छी मालूम होती है, तथा उसमें कोई संक्रामक रोगों के जीवाणु और परोपजीवी जन्तु हों तो मर जाते हैं, और पानी की राशि कम हो जाती है।

प्राणियों का निरीक्षण

मांसं सद्योहतं शुद्धं वयस्थं च भजेत् त्यजेत् ।
मृतं कृशं भृशं मेद्यं व्याधिवारिविषैर्हतम् ।। वाग्भट ।।
चरः शरीरावयवाः स्वभावो धातव क्रिया ।
लिंगं प्रमाणं संस्कारो मात्रा चात्रपरीक्ष्यते ।। चरक ।।

हत्या करने के पूर्व प्राणियों को कम से-कम २४ घंटे अच्छी तरह से देखना चाहिए और इस अवधि में उनके खाने पीने का प्रबन्ध ठीक रखना चाहिए। जिन पशुओं का माँस खाना है वे बूढ़े और बच्चे न होना चाहिये।

वृद्धम् बालं ` उत्सृजेत् । चरक
वयस्थमित्युक्त्या शोभनं तरुणं वय इतिशस्यते ।। तस्मात्
यूनः प्राणिनो मांसं भजेन्न बालवृद्धयोरति ।।अरुणदत्तः।।

मांस की घटना, खुशबू, पचनशक्ति इत्यादि प्राणियों की जात, वय, शरीरावयव इत्यादि पर निर्भर रहती है। प्राणियों की आयु दाँतों से या सिंगों के छल्लों की संख्या से मालूम पड़ती है, तथापि सौदागर प्रायः इन छल्लों को रेती से रगड़ कर मिटा देते हैं। पशु बिलकुल स्वस्थ होना चाहिये। इनके स्वास्थ्य के लक्षण यथेच्छ और फूर्ति से चलना और फिरना, शरीर का पुष्ट होना, आँखों में चमक, नाक की झिल्ली लाल, रौनकदार और गीली, श्वासोश्वास की क्रिया नियमित और आसानी से होना, उसमें कोई बू न आना, त्वचा चमकदार और मुलायम इत्यादि हैं। इसके विपरीत जब पशु अस्वस्थ होता है तो वह धीरे-धीरे चलता है, त्वचा में चमक नहीं होती, नथने सूखे और झाग से भरे हुए होते हैं,

आँखें भरी और चमक रहित होती हैं, जीभ बाहर लटकती हुई और श्वास इस प्रकार चलता है कि उसे श्वास में जोर लगाना पड़ता है। पशु यदि ज्वर से पीड़ित हो तो कान पाव और गौ के स्तन उष्ण रहते हैं। पशुओं में राजयक्ष्मा भी होता है, इसलिये इसका भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये, क्योंकि वह मनुष्यों पर आसानी से संक्रांत होता है। इस रोग की पहचान यह है कि यक्ष्मा से पीड़ित पशुओं की ग्रीवा तथा पेट की ग्रंथियों में प्रदाह उत्पन्न होकर वे बढ़ जाती हैं। गौ में उपर्युक्त ग्रंथियों के अतिरिक्त स्तनों में भी प्रदाह होती है। यदि इसके बारे में कुछ संदेह हो तो काक की ट्युबरक्युलीन (Koch's tuberculin) सूई लगवाकर निश्चय कर लेना चाहिये।

मॉंस का निरीक्षण—पशुओं के निरीक्षण के अतिरिक्त उनके माँस की भी परीक्षा करनी चाहिये। अच्छा माँस सख्त, स्थितिस्थापक, चमकीले लाल रंग का और चरबी के कारण संगमर्मर के पत्थर जैसा मालूम होता है। दबाने पर उसमें गढ़ा नहीं पड़ता तथा कड़कड़ नहीं होती। उसके बीच के रक्त-स्रोत में रक्तस्राव नहीं होना चाहिये क्योंकि वह उत्कट व्याधि का सूचक है। माँस से जो रस निकलता है वह रंग में लाल, प्रति-क्रिया में अम्ल, बू में ताजा और खुशबूदार होना चाहिये। सड़ा-गला माँस पीला, पिलपिला, और पीछे से हरा हो जाता है, तथा उसमें से बुरी गंध आती है और प्रति-क्रिया अल्कलाईन या प्रति-क्रिया रहित होता है। उत्तम विधि यह है कि माँस के भीतर चक्कू चुभो कर देखना चाहिये कि उसके फलक से कोई बुरी गंध आती है या नहीं। अच्छे माँस पर मेद का बना हुआ आवरण सख्त, पीले रंग का, और

रक्त-रहित होता है तथापि सूट चरबी (Suet fat) कठिन और श्वेत होती है। एक दिन या दो दिन रखने से अच्छे माँस में पानी नहीं तयार होता है, बल्कि वह सूख जाया करता है। यदि माँस को २१२ फा० ताप तक उष्ण किया जाय तो अच्छे माँस से ७० प्र० श० भार कम हो जाता है और खराब माँस में ८० प्र० श० भार कम हो जाता है। फुफ्फुस में विद्रधि या शोथ के लिये देखना चाहिये। डिस्टोमा (Distoma) नामक कृमि के लिये यकृत की परीक्षा करनी चाहिये। स्फीत कृमि के (Tenia) लिये स्नायु पेशियों की परीक्षा करना चाहिये।

दूषित मांस सेवन से उत्पन्न होनेवाले रोग–

उष्ण प्रदेशों में माँस जल्दी सड़ने लगता है, इसलिये जहाँ तक होसके हत्या करने के दिन माँस को पकाकर रखना चाहिये या खाना चाहिए। बहुत देर तक माँस रखने से सड़ जाता है और उसके सेवन से उत्क्लेश, वमन, शूल, अतिसार, बलक्षय, अवसाद इत्यादि पूतिविष (Ptomaine Poisoning) के लक्षण पैदा होते हैं। यदि प्राणि जहरीले पौधे पर पला हो या उन्हें संखिया अंजन (Arsenic, Antimony) इत्यादि पदार्थों का सेवन करवाया हो हो ऐसे प्राणियों का माँस खाने से भी संखिया या अंजन के विषलक्षण पैदा होते हैं। माँस में जो जीवाणु होते हैं वे पकाने के बाद नष्ट हो जाते हैं, लेकिन जीवाणुओं से जो विष माँस में पैदा होता वह नष्ट नहीं हो सकता। प्राणियों में जो परोपजीवी जंतु (Parasite) पाए जाते हैं वे ये हैं— Taenia solium, Taenia medio canelata, Bothriocephalus latus। जिन प्राणियों के माँस में ये जंतु होते हैं उनका

माँस यदि अच्छी तरह से न पकाया जाय तो इनके कोष (cysticerci) पेट के अंदर चले जाते हैं, और कुछ परिवर्तन पाकर आँतों में डेरा जमा देते हैं। ये सब स्फीत कृमि (Tapeworm) के प्रकार हैं। दूसरा एक परोपजीवी कृमि माँस में मिलता है जिसका नाम Trichina Spiralis है और जो सूअर के माँस में पाया जाता है। इस जीव से दूषित माँस खाने से Trichiniasis नामक रोग हो जाता है और उसके लक्षण ये हैं—अतिसार, अग्निमांद्य, ज्वर, माँस पेशियों में ऐंठन, आक्षेप और मूर्च्छा। उसके बाद कुछ सप्ताह में मृत्यु हो जाती है। पृष्ठ व्रण (Anthrax) जल संत्रास, ग्लांडर्स, राजयक्ष्मा इत्यादि रोगों से पीड़ित पशुओं का माँस नहीं भक्षण करना चाहिए, क्योंकि इनके रोग मनुष्यों पर संक्रांत होने की संभावना रहती है।

मांस का संरक्षण—प्रथम मांस को अच्छी तरह से पकाकर फिर उसे निर्जंतुक और हवाबंद डिब्बे में रख देते हैं। कच्चा मांस का रक्षण करने के लिये नीचे दी हुई विधियां प्रचलित हैं।

१—शुष्कीकरण

२—धूपन (Smoking)

३—ठंडा करना (Refrigeration, Freezing)

४ रासायनिक द्रव्य का उपयोग।

मांस को धूप में या आग के पास रखकर सुखा लेते हैं। इससे मांस का जलांश उड़कर पूतिजनक जीवाणुओं की उत्पत्ति रुक जाती है। सूखाते समय मांस का थोड़ा धूपन भी करते हैं। मांस के रक्षण के लिये नमक एक उत्तम रासायनिक द्रव्य है तथापि उससे मांस की पौष्टिकता कम हो जाती है। नमक डालने की विधि यह है कि या तो नमक मांस

के ऊपर ऊपर छिड़क देते हैं या नमकीन पानी में रख देते हैं। इस पानी में १ भाग शोरा, ३२ भाग लवण, और २ भाग शक्कर होती है। मांस का सर्दी द्वारा रक्षण इस अनुभव पर आश्रित है कि सर्दी के प्रभाव से जीवाणुओं की उत्पत्ति रुक जाती है। मांस जब जहाजों से दूसरे दूर देशों को भेजा जाता है तो इस विधि का प्रयोग होता है। मांस को या तो ठंडा करते हैं या ऐसे कमरे में रखते हैं कि जिसकी उष्णता ० सें० हो। ठंडा किया हुआ मांस जब हवा के साधारण उष्णता पर आता है तो वह फिर थोड़ी ही देर में खराब होने लगता है, इसलिये उसका सेवन जल्दी करना चाहिये।

जब मांस को डिब्बे में बंद करना है तो उष्णता का प्रयोग करते हैं। प्रथम मांस को डिब्बे में दबाव से भर देते हैं और उसके बाद एक आधे घंटे तक ११५ सें. ० उष्णता पर बाष्प में रखते हैं। उष्णता के कारण टीन के अंदर के पदार्थ फैला करते हैं, इसलिये ढक्कन में एक छेद रखते हैं जिससे टिन की वायु बाहर आ सके। फिर इसे बंदकर देते हैं। इसके बाद मांस को पूरी तौर से निर्जंतुक करने के लिये इसे दुबारा एक घंटे तक ताप देते हैं। ये टीन के मांस धातु के असर से विषैले होने की संभावना रहती है, इसलिये टिन खोलने के बाद यदि मांस का रंग हायड्रोजन सल्फाईड (H_2S) के असर से कालासा मालूम हो तो मांस को फेंक देना चाहिये।

अंडा

दूध को छोड़कर खाद्य-द्रव्यों में अंडा एक ऐसा पौष्टिक पदार्थ है जिसमें की सिवाकर्बो हाइड्रेट के, आहार के सर्व उपादान पाये जाते हैं।

प्राय: मुर्गी का अंडा खाया जाता है, तथापि कहीं कहीं बत्तखों के तथा समुद्र पक्षियों के अंडे भी खाये जाते हैं। अंडे का औसतन भार दो औंस अर्थात् ५ तोला होता है, उसमें ७२ प्र० श० कवच, ५८ प्र० श० श्वेत भाग और ३० प्र० श० पीला भाग होता है। सफेत कवच क्यालसिअम कारबोनेट का होता है। श्वेत भाग में प्रोटीन विशेष करके एग अल्ब्यूमिन होता है। पीले भाग में मेद तथा लोह और फास्फरस के क्षार अधिक होते हैं।

अंडे की घटना

	जल	प्रोटीन	मेद	क्षार
श्वेत भाग	८५.७	१२.६	०.२५	०.५९
पीत भाग	५०.९	१६.२	३१.७५	१.०९

अंडे में जो क्षार होते हैं वे पोटयाशिअम, लोह और फास्फरस के होते हैं। ऐसा प्रमाणित हुवा है कि खनिज पदार्थ सेंद्रिय द्रव्य के रूप में आंतों में से अधिक परिमाण में जज्व होते हैं, इसलिये अंडे में जो लोह का अंश होता है वह लोहे के दूसरे औषधि प्रयोग से अधिक जज्व होता है और इसी कारण से पांडु रोगी के लिये अंडा एक उत्तम खाद्य पदार्थ है। इसमें क्यालसिअम के क्षार भी बहुत प्रमाण में होते हैं, और सिवा दूध के इतने अन्यत्र खाद्य-द्रव्यों में नहीं पाये जाते।

सब मांस वर्ग के खाद्य-द्रव्यों में अंडा सब से अधिक सुरक्षित है, क्योंकि न तो रोगों के जीवाणुओं को फैलाता है और इनमें कोई हानिकारक अवगुण है। ऐसा कोई संक्रामक रोगों का पता अभी तक लगा नहीं है जो अंडे के सेवन से मनुष्यों में संक्रामित हुवा है।

पौष्टिकता की दृष्टि से अण्डा एक ऊँचे दर्जे का खाद्य-द्रव्य है। आंतों में उसका ९५ भाग जज्ब हो जाता है, केवल ५ भाग किट्ट स्वरूप होता है। एक अण्डा ४½ औंस दूध के बराबर पौष्टिकता की दृष्टि से आता है। उसमें पुरीन द्रव्य (Purin or Purin yielding bodies) न होने के कारण वात-रक्त में यह बहुत फायदेमंद होता है।

अंडे की पचनीयता, जिस प्रकार से अंडे का सेवन किया जाता है उस पर निर्भर होती है।

अंडे का आमाशय में रहने का काल

थोड़ा उबाला अंडा	१¾ घंटा
कच्चा ,,	२¼ ,,
बहुत उबाला ,,	३ ,,
आमलेटी ,,	३ ,,

कच्चा अंडा रुचिरहित होने के कारण आमाशयिक पाचक रस को उत्तेजित नहीं कर सकता, इसलिये उसका पचन आमाशय में थोड़ा भी नहीं होता, आंतों में होता है। उबाले हुए अण्डे का अल्ब्यूमिन जम जाने के कारण उसका पचन जरा कठिनाई से होता है। एक अण्डे से ७० क्यालरी (Calory) उष्णता शरीर में पैदा होती है। अण्डे की पहचान—अण्डे को बत्ती के प्रकाश के सामने देखने से ताजे अण्डे का मध्य चमकीला सा मालूम होता है और खराब अण्डे का ऊपर का भाग चमकीला होता है, क्योंकि विघटन से उत्पन्न हुई ग्यास ऊपर के भाग में इकट्ठा होती है। दूसरी पहचान यह है कि अच्छा ताजा अण्डा १० प्र० श० नमक के घोल में डूबता है और खराब तैरता है। अण्डे का

संरक्षण—अण्डे के कवच के ऊपर तेल, मक्खन, गोंद इत्यादि लगाने से अण्डा ठीक रहता है। लकड़ी के बुरादे में तथा नमक में रखने से भी ठीक रहता है। जहाँ ताजा अण्डा सदैव मिलना मुश्किल है वहाँ शुष्क अण्डे का (Desiccated) उपयोग किया जाता है। इस विधि में अण्डे को फोड़कर उसके भीतरी भाग तप्त बेलन तथा तप्त हवा के सहायता से शुष्क करके रख देते हैं।

मछली

गुरूष्णा मधुरा बल्या बृंहणाः पवनापहाः।
मत्स्याः स्निग्धाश्च वृष्याश्च बहुदोष प्रकीर्तिताः ॥चरक॥

भारतवर्ष में बंगाल तथा समुद्र के किनारे रहनेवाले लोग मछली का बहुत उपयोग करते हैं। यह बहुत पौष्टिक खाद्य है। इसमें केवल दो पौष्टिक भाग विद्यमान हैं, प्रोटीन और मेद। मेद के प्रमाण के अनुसार मछली के दो भेद किये गए हैं। कृश और पुष्ट। कृश मछली में २ प्र० श० मेद हुआ करता है और पुष्ट मछली में २ से ५ या अधिक मेद होता है। मछली के बहुत प्रकार हैं और प्रत्येक प्रकार के मछली की रुचि, पौष्टिकता, पचनीयता भिन्न भिन्न होती है।

सामान्यतः मछली आशुपाकी होती है और उसका ८५ भाग प्र० श० सारभूत होकर आंतों में से शोषित होता है और केवल ५ भाग किट्ट-स्वरूप होता है। इससे यह स्पष्ट है कि निर्बल तथा सद्यः रोगमुक्त मनुष्यों के लिये मछली बहुत फायदेमंद हैं।

पहिले लोगों की यह राय थी कि मानसिक काम करनेवालों के

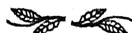
आहार में मछली अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उसमें फास्फरस बहुत होता है, परन्तु दोनों घटनाओं में से एक की भी सत्यता सिद्ध नहीं हुई।

मछली हमेशा ताजी और जहाँ तक हो सके पकड़ जाने के बाद शीघ्र ही खाना चाहिये। ताजी मछली सख्त और दुर्गंध रहित होकर यदि भू-पृष्ठ से समांतर पकड़ी जाय तो इसकी पूँछ नीचे नहीं झुकती। आँखें भरी और उभरी हुई, पुतलियाँ काली, फेफड़े (Gills) चमकीले और लाल, शरीर के छिलके भरे हुए दृढ़ तथा आसानी से अलग नहीं हो सकते। सड़ी हुई मछली की आँखें भूरी, अन्दर को धँसी हुई और निष्प्रभ होती हैं। इसके फेफड़े भूरे तथा पिलपिले और त्वचा के छिलके आसानी से निकल पड़ते हैं। उसके शरीर में स्थिति-स्थापकता नहीं होती और उसमें से बुरी गंध आने लगती है। गर्मी के मौसम में मछली जल्दी सड़ने लगती है इसलिये मई, जून, जुलाई और अगस्त इन चारों महीनों में मछली नहीं खाना चाहिये।

सड़ी गली मछली तथा डिब्बे की मछली (Tinned fish) खाने से वमन, अतिसार, अवसाद इत्यादि विषलक्षण (Ptomaine Poisoning) पैदा होते हैं। खराब पानी में रहनेवाली मछली या मसल या आइस्टर (Mussel and oyster) खाने से कभी २ हैजा, आंत्रिक ज्वर होने की संभावना रहती है। मछली में बहुत परोप-जीवी जंतु रहते हैं तथापि केवल एक प्रकार का स्फीत कृमि (Bothrio cephalus latus) मनुष्यों में संक्रात होता है।

मछली को सुरक्षित रखने के लिये कई विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं तथापि इसके गंध में बहुत फर्क होता है। सुरक्षित रखने के लिये

मछली को सुखाते हैं, नमक मिला देते हैं, धुआं देते हैं, मुरब्बा बनाते हैं तथा टिन में बंद कर देते हैं। इस तरह से रक्षित मछली अग्निमांद्य करती है और दुर्बल तथा रोगमुक्त लोगों के लिये हानिकारक है। डिब्बे में बंद की हुई मछली खाना खतरनाक है, क्योंकि दो महीने के बाद सड़ने लगती है। डिब्बे खरीदते वक्त अच्छी तरह से देख भाल करके खरीदना चाहिये, नहीं तो ऐसी मछली खाने से पूतिविष के (Ptomaine Poisoning) लक्षण पैदा होते हैं।



नवम अध्याय

वनस्पति वर्ग

वनस्पतीनां वर्गश्च सर्वोपादान संयुतः।
शालीयद्रव्यभूयिष्टः शरीरबलदायकः॥

खाद्य-द्रव्यों का दूसरा और बड़ा विभाग वनस्पति वर्ग का है। इस वर्ग की विशेषता यह है कि इसमें कार्बोहाइड्रेट अधिक परिमाण में होते हैं, जैसे मांसवर्ग में प्रोटीन अधिक होते हैं। तथापि यह नहीं समझना चाहिये कि इस वर्ग में प्रोटीन होते ही नहीं। अरहर, उड़द इत्यादि दालों में प्रोटीन मांसवर्ग से भी ज्यादा होता है, तथा सूखे मेवे इत्यादि में मेद भी बहुत होता है। इस वर्ग के द्रव्यों में खनिज-क्षार तथा पानी भी काफी होता है। ये आमाशय में हजम नहीं होते, क्योंकि इनका मुख्य भाग स्टार्च होता है, जिस पर जाठरस का कुछ असर नहीं होता। इसलिये वनस्पति द्रव्यों का पचन तथा सात्मीकरण आंतों में होता है।

वनस्पति के प्रोटीन सामान्यतः ग्लोब्यूलिन वर्ग के होते हैं और नमक के सहायता से पानी में विद्रुत होकर रहते हैं। इनमें न्यूक्लिओ प्रोटीन मांसवर्ग से कम होते हैं।

सामान्यतया पकाने के बाद वनस्पति का तथा मांस का प्रोटीन-भाग दुष्पाच्य हो जाता है, तथापि वनस्पतिज खाद्यद्रव्य पकाने के बाद सुपाच्य और मांसवर्ग के खाद्यद्रव्य दुष्पाच्य हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि प्राणिज द्रव्यों में प्रोटीन अधिक होने के कारण वे दुष्पाच्य हो जाते हैं, और वनस्पतिज द्रव्य में स्टार्च ज्यादा होने के कारण वे सुपाच्य हो जाते हैं, क्योंकि पकाने के बाद स्टार्च पचने में हलका होता है।

वनस्पतियों का मेद प्राणियों के मेद जैसा संघटन में होता है, तथापि उसमें फर्क इतना ही है कि उसमें मेदसाम्ल नीच श्रेणी के (Lower fatty acids, olein and linolein) होने के कारण यह मेद तरलावस्था में होता है और उसको तेल कहते हैं।

वनस्पतियों के कार्बोहाइड्रेट मुख्यतः स्टार्च और शर्करा रूप में होते हैं। वनस्पतियों में कार्बोहाइड्रेट का जो संचय किया जाता है वह स्टार्च के रूप में खासकर कंद, मूल, तथा बीज में होता है। सचमुच स्टार्च वनस्पतियों की संचित शक्ति है, तथापि इसका उपयोग वनस्पतियों को स्टार्च के रूप में नहीं हो सकता। वक्त जरूरत पर डायस्टेस (Ferment diastase) फर्मेंट के सहायता से उसको शर्करा में रूपांतरित करके फिर तमाम शरीर में फिराया जाता है और जहां जरूरत होती है वहां लिया जाता है।

स्टार्च शर्करा का एक संघटित रूप है, और जल में अविद्राव्य है, और इस कारण से वृक्षों में इसका संचय हो सकता है। पानी में उबालने से स्टार्च के सूक्ष्मकण फूलकर उसके ऊपर आतों के पाचक रस का प्रभाव ठीक पड़ता है, इसलिये वनस्पतिज पदार्थ पकाने से सुपाच्य हो जाते हैं।

आसानी के लिये वनस्पतिवर्ग के द्रव्य निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं।

१ शूकधान्य
२ शिंबीधान्य
३ कंदमूल
४ सागसब्जी
५ फल, मेवे, किसमिश

शूक धान्य वर्ग

शूकधान्य (Cereals)—ये ग्रामीनीअसी (Graminacae) नामक श्रेणी के वनस्पतियों का बीज है। मनुष्य जाति का प्रधान खाद्य केवल इस श्रेणी के धान्य से ही होता है। इसके मुख्य चावल, गेहूँ, मकई, बाजरा, ओट इत्यादि हैं। तथापि केवल चावल और गेहूँ इस संसार में जितने लोग हैं उनमें से $\frac{९}{१०}$ लोगों का प्रधान खाद्य है। भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न धान्य खाये जाते हैं। युरोप में गेहूँ, अमेरिका में मकई और भारतवर्ष में चावल, बाजरा, ज्वार इत्यादि। इनमें करीब करीब ७० भाग कार्बोहाइड्रेट ६ से १८ भाग प्रोटीन और कुछ स्नेह और खनिज भाग भी होता है।

प्रधान प्रधान शूकधान्यों की घटना

धान्य	प्रोटीन	कार्बो	फ्याट	क्षार	पानी
गेहूँ	१२·२४	७०·९२	२·१८	२·२४	११·८३
चावल	६·८६	७८·८	९·८	१·३२	११·०५
मकई	९·७	७०·९	५·४	१·५	१२·५
बाजरा	१०·०	७३·३	२·२	२·६	११·९
ज्वार	१२·५	७०·०	४·०	१·५	१२·०

गेहूँ

वनस्पतिवर्ग के खाद्य-द्रव्यों में गेहूँ सब से प्रधान खाद्यद्रव्य है और इस संसार में दूध को छोड़कर दूसरी ऐसी कोई भी खाने की चीज नहीं है जो गेहूँ से अधिक व्यवहार में आती हो। यद्यपि यह दूध के समान आदर्श खाद्य नहीं है तथापि गेहूँ में हमारे शरीर-पोषक भिन्न भिन्न सारे ही उपादान पाये जाते हैं।

गेहूँ की बनावट—गेहूँ छोटा बादामी रंग का होता है। उसको लंबाई में (Longitudnal section) खूब महीन काटकर अणु-वीक्षण यंत्र की सहायता से देखे तो नीचे दिये हुए अवयव दृष्टि गोचर होते हैं।

१ भूसी या बाहरी छिलका। ३ जर्म—एंडोस्पर्म।
२ गूदा। (Germ Endosperm)

भूसी—यह गेहूँ का बाहिरी छिलका है और पांच स्तरों में विभक्त होता है। उसके बाहरी तीन स्तर केवल भूसी होती है, बाकी जो दो स्तर

होते हैं वे शस्य को ढके रहते हैं और इनके कारण आटे में रंग होता है। यह भूसी सिल्युलोज़ (Cellulose) और खनिज क्षार की होती है; और तौल में सारे गेहूँ का १२ से १५ भाग होती है।

गूदा—यह ग्यूटेन और स्टार्च का होता है और सारे गेहूँ का ८० से ८५ भाग होता है।

जर्म—यह गेहूँ के नीचले भाग में होता है और सारे गेहूँ के तौल का $\frac{१}{५०}$ भाग होता है।

गेहूँ के रासायनिक घटक—गेहूँ में पांच प्रकार के प्रोटीन जातीय पदार्थ पाये जाते हैं, यथा—ग्लोब्यूलिन, अल्ब्यूमिन, प्रोटिओज, ग्लायोडिन, ग्लूटेनिन। इन सब पदार्थों को ग्लूटेन (Gluten) कहते हैं। उत्तम गेहूँ में यह १०–१४ प्र० श० और कनिष्ट गेहूँ में ८–९ प्र० श० होता है। यह गोंद की भांति एक चिपचिपा पदार्थ है और इसी द्रव्य के कारण से रोटी बनाने में बड़ी आसानी मालूम होती है।

भूसी में प्रोटीन जातीय उपादान होने पर भी उसका पचन नहीं हो सकता। भूसी में सिल्युलोज अधिक होता है। सेल्युलोज एक प्रकार का काष्ट जातीय पदार्थ हैं जो हमारे शरीर में कुछ काम नहीं करता है। भूसी में नमक का अंश भी होता है, जिसमें पोट्याशिअम फास्फेट का अंश ज्यादा होता है। गेहूँ में म्याग्नेशिअम और लोह के सूक्ष्मांश भी पाये जाते हैं।

साधारणतया गेहूँ के दो प्रकार होते हैं, श्वेत और लाल। खाने के लिये गेहूँ पीसकर खाया जाता है। आटे के कलों के प्रादुर्भाव के पहिले भारतवर्ष में गेहूँ चक्की या खरास से पीसा जाता था। आज कल बजार

में जो आटा मिलता है वह सब कल की सहायता से पीसा हुआ मिलता है। इनमें गेहूँ दो प्रकार से पीसा जाता है। प्रथम प्रकार में गेहूँ एक ही बार में पीसा जाता है। इस तरह जो आटा तयार होता है उसमें गेहूँ के कुल उपादान विद्यमान होते हैं, इसलिये इसे पूर्णखाद्य (Whole meal) कहते हैं। इसमें सर्व घटक मौजूद रहने के कारण इसको साधारण मयदे की अपेक्षा अधिक पुष्टिकर समझा जाता है। तथापि बहुत परीक्षाओं द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि साधारण पावरोटी की अपेक्षा यह कम पुष्टिकर है। इसका कारण यह है कि इसमें भूसी ज्यादा होने की वजह से पाचकरस स्टार्च और प्रोटीन उपादनों के साथ अच्छी तरह से नहीं मिल सकता, इसलिये इन पौष्टिक द्रव्यों का परिपाक भली भांति न होकर उसका शोषण भी आंतों में नहीं होता। तथापि ऐसा खाद्य जीर्णमलावरोध (Chronic constipation) के रोगी के लिये पथ्यकारक होता है। अभी हाल में इस विधि में कुछ फर्क करके दूसरे प्रकार का खाद्य-द्रव्य बनाते हैं जिसको भूसी रहित पूर्णखाद्य (Decorticated whole wheat meal) कहते हैं। जिसमें भूसी के उपरले तीन स्तर निकाल कर भीतर के दोनों स्तरों जिसको अल्यूरोनपर्त (Aleurone layer) कहते हैं रख देते हैं। दूसरा प्रकार यह है कि पहिले पानी में केवल गेहूँ की भूसी अलग कर देते हैं और गेहूँ को फिर पीसते हैं। इस बार जिन बेलनों में गेहूँ डालते हैं वे पहिले की अपेक्षा अधिक पास रखते हैं। इसी तरह प्रति वेला बेलनों को अधिक नजदीक करके महीन आटा तैय्यार करते हैं। इस तरह गेहूँ पाँच छः बार पीसा जाता है और सूजी, आटा, मयदा इत्यादि सब चीजें तयार करते

हैं । सूजी सब से मोटी, आटा इससे महीन और मयदा सब से महीन होता है ।

इनकी घटना

पदार्थ	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	फ्याट	क्षार
उत्कृष्ट मयदा	९ ७३	८० ८३	५ २२	०'४८
आटा	१२ ०३	६४ ७९	२·२५	० ६८
सूजी	१४'२६	४३'३३	१ ५०	० ६१
भूसी	१५ १५	२८'५३	८ ४२	४ ८८

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि जब गेहूँ से भूसी निकाल देने से आटे में क्षार और स्नेह पदार्थ की कमी हो जाती है, इसलिये आहार के रूप में जब आटा लेना हो तो उसमें नमक और स्नेह डालकर लेना चाहिये अच्छे आटे का रंग सफेत और थोड़ा पीला होना चाहिये । उसमें से बूरा गंध नहीं आना चाहिये । सील स्थान पर रखने से आटा खराब होता है और उसमें घास-फूस (Mould fungi) उत्पन्न होती है । इस कारण से आटे को सूखे स्थान में रखकर, जहां तक हो सके पीसने के बाद जल्दी खाना चाहिये ।

गेहूँ से बनी खाने की चीज़ें

पावरोटी—पाश्चात्य देशों में पावरोटी सर्व प्रधान खाद्य है, और हाल में भारतवर्ष में भी इसका बहुत उपयोग हो रहा है । इसको बनाने के लिये आटे में खमीर (Yeast) मिला दिया जाता है ताकि आटे में क्षोभ से CO_2 पैदा होकर रोटी को स्पंज की भांति नरम करे । यदि

खमीर ज्यादा मिलाया जावे तो अम्लपित्त के लक्षण होते हैं। इस दोष को हटाने के लिये रोटी तैय्यार करने के समय इसमें थोड़ा सोडा बायकार्बोनेट और सायट्रिक असीड मिला देते हैं।

अच्छे भुने हुए पावरोटी के ऊपर का छिलका पतला, कड़ा, चमकदार और कुछ लाल रंग का होता है। काटने से उसके भीतर बहुत छोटे छोटे छेद दिखाई पड़ते हैं। जिस रोटी में छोटे छेद के स्थान में बड़े बड़े छेद होते हैं वह अच्छी नहीं होती। आकार मान से रोटी का $\frac{२}{३}$ भाग भाप का ही बना रहता है। रोटी के भीतर का भाग पीली धाप मारता हुआ श्वेत रंग का होना चाहिये।

रोटी बहुत पौष्टिक खाद्य द्रव्य है, तथापि स्नेह द्रव्य की कमी से हमेशा मक्खन के साथ खाना चाहिये।

बिस्कूट—बहुत महीन मयदा से बिस्कूट बनाई जाती है। स्वादु बनाने के लिये इसमें अंडे का सफेता मक्खन, दूध, शक्कर इत्यादि पदार्थ मिला देते हैं। रोटी की अपेक्षा बिस्कूट अधिक पौष्टिक है।

चपाती—भारतवर्ष में चपाती का प्रयोग अधिक होता है। भिन्न भिन्न प्रांतों में रोटी बनाने की प्रथा भिन्न भिन्न होती है। आटा, मयदा, सूजी तीनों की भी चपाती की जाती है, तथापि आटे की रोटी सबसे अधिक स्वादिष्ट होती है। चपाती अच्छी तरह से भुनकर ताजी ताजी खाना चाहिये। बासी हरगिज नहीं खाना चाहिये। वह पचने में कठिन होती है। सूजी में घी शक्कर डालकर हलवा बनाया जाता है। यह बहुत पौष्टिक खाद्य हैं तथापि पचने में बहुत जड़ और इससे अम्ल पित्त होने की संभावना होती है।

चावल

भारतवर्ष में बंगाल तथा मद्रास प्रांत में चावल का उपयोग प्रधान खाद्य के रूप में किया जाता है। सब शूक धान्यों में चावल में प्रोटीन मेद और खनिज द्रव्यों की बहुत कमी होती है। इसका मुख्य उपादान स्टार्च है और वह अत्यंत सुपाच्य अवस्था में रहता है, इतना कि चावल का बहुत सा भाग आंन्तों में जज्ब होकर केवल थोड़ा भाग किट्ट स्वरूप बाकी रहता है।

गेहूँ की तरह चावल को भी सील वाले स्थान में नहीं रखना चाहिये। क्योंकि सील से चावल में विघटन पैदा होने लगता है और फिर वह खाने योग्य नहीं होता। इसलिये चावल हमेशा खुलासा ठंडे और शुष्क स्थान में रखना चाहिये।

चावल हमेशा बहुत पानी में उबाल कर शेष पानी को हटा दिया जाता है। यह चावल पकाने की प्रथा ठीक नहीं है, क्योंकि इससे बहुत सा पौष्टिक भाग नष्ट हो जाता है। इसलिये चावल हमेशा बाष्प की सहायता से या जितनी पानी की जरूरत हो उससे ही पकाना चाहिये। नये चावलों की अपेक्षा पुराने चावल शीघ्र हजम होते हैं और पथ्यकर हैं।

शूकधान्यं शमीधान्यं समातीतं प्रशस्यते।
पुराणं प्रायशो रूक्षं प्रायेणाभिनवं गुरु ॥ चरक ॥

जिस चावल की ऊपर की भूसी पूर्णतया निकाली जाती है ऐसे चावल को स्वच्छ चावल (Polished rice) कहते हैं। भूसी में जल विद्राव्य जीवतत्व 'बी' होता है, और भूसी में यह नष्ट होने के कारण ऐसा चावल हमेशा सेवन करने से वातबलासक (Beri Beri)

नामक रोग पैदा होता है। चावल में प्रोटीन तथा मेद द्रव्य बहुत कम होने के कारण इसकी पूर्ति करने के लिये खिचड़ी नामक खाद्य-द्रव्य तयार किया जाता है जिसमें दाल तथा घी और मसाला डाला जाता है। यह बहुत पौष्टिक रुचिकर और अग्निदीपक है।

ज्वार बाजरा–इसे अधिकतया गरीब लोग खाते हैं। गेहूँ की अपेक्षा यह कम पौष्टिक है तथापि इसमें खनिज क्षार-विशेष करके फास्फरस और म्याग्नेशिया अधिक परिमाण में होते हैं।

मकई—इसको भुट्टा कहते हैं। इसमें प्रोटीन और मेद का भाग बहुत होता है इसलिये यह पौष्टिक है। इसमें ग्लूटेन कम होने के कारण इस की रोटी नहीं बनायी जाती। प्रायः दाल की शकल में इसका सेवन किया जाता है। यह पचन होने में बहुत कठिन है इसलिये शारीरिक श्रम करनेवाले तथा मजबूत लोगों के लिये यह उत्तम खाद्य है परंतु दुर्बल और अग्निमांद्यादि विकार से पीडित लोगों के लिये हानिकारक है।

शिंबीधान्यवर्ग

वनस्पति शास्त्र में ये लेग्युमिनीअस (Leguminous order) श्रेणी के हैं। इनमें दूसरे वनस्पति द्रव्यों की अपेक्षा नायट्रोजन युक्त द्रव्य अधिक होता है। इस द्रव्य को लेग्यूमिन (Legumin) कहते हैं। इनका सेवन दाल के रूप में किया जाता है। शूक धान्यों की अपेक्षा ये पचने में कठिन होते हैं और आध्मान भी पैदा करते हैं। इनके मुख्य खनिजक्षार पोटयाशिअम, चूना और गंधक है। इस श्रेणी के प्रधान खाद्य-द्रव्य अरहर, मूँग, चना, वाटाणा, उड़द, मसूर ये हैं। ये ताजे और सूखे खाये जाते हैं। ताजे ताजे पचने में हलके रहते हैं।

सूखे द्रव्य में जीव-द्रव्य नहीं पाया जाता परन्तु यदि इन धान्यों को गरम पानी में रखा जाय तो ४८ घंटे के अंदर वे अंकुरित हो जाते हैं और अंकुरों में जीव-द्रव्य उत्पन्न होता है, इसलिये अंकुरित धान्य खाने की जो प्रथा है वह स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत पथ्यकर है।

दाल को पकाने के पहिले छिलका अच्छी तरह से निकालकर धोना चाहिये। मसूर की दाल अधिक मात्रा में खाने से ऊरुस्तंभ जैसा (Spastic Paraplegia) रोग होता है। दाल में प्युरिन नामक द्रव्य भी बहुत होता है, इसलिये वातरक्त के रोगी के लिये दालका सेवन हानिकारक है।

प्रधान प्रधान शिंबीधान्यों की घटना

द्रव्य	प्रोटीन	मेद	कार्बोहाइड्रेट	खनिधद्रव्य
मसूर	२५–४७	३ · ०	५५ · ०३	३ · ३३
अरहर	२१ · ६७	३ · ३३	५४ · २७	५ · ५०
चना	१९ · ९४	४ · ३१	५१ · १३	३ · ७२
मूँग	२३ · ६१	२ · ६९	५३ · ४५	३ · ५७
उड़द	२२ · ३३	१ · ९५	५५ · २२	३ · ०
मटर	२४ · ६	१ · ०	६२ · ००	२ · ६

कंदवर्ग

कंद वनस्पतियों की स्टार्च के रूप में संचित शक्ति है। प्रोटीन और मेद इनमें नहीं होता। पौष्टिकता की दृष्टि से शूक और शिंबीधान्यों से बहुत कम दर्जे के होते हैं। इनमें पोटयाशिअम के क्षार ज्यादा होने के कारण खाद्य-द्रव्यों में इनके लिये थोड़ा सा स्थान है।

प्रधान-प्रधान कंद और उनकी घटना ।

कंद	जल	प्रोटीन	मेद	कार्बोहा	क्षार
आलू	७६·७	१·२	०·१	१९·७	०·९
रतालू	७२·९	१·६	०·५	२४·३	०·७
प्याज	८९·१	१·६	०·३	८·३	०·६
मूली	९०·८	१·४	०·१	४·६	०·९
गाजर	८५·७	०·५	०·३	१०·१	०·९
साबूदाना	१८·०	०·०	०·०	८२·०	०·०
आरोरूट	१६·६३	०·८	०·०	८३·३	०·२७

कंद श्रेणी में आलू सब से श्रेष्ठ है और उसका उपयोग भी संसार के सारे देश में हो रहा है। इसमें पोटयाशिअम सायट्रेट नामक क्षार है जिसके कारण यह स्कर्वी प्रतिषेधक (Anti sorbutic) है। आहार द्रव्यों में आलू बहुत उपयोगी है, तथापि अग्निमांद्य से पीडित लोगों के लिये पथ्यकर नहीं है। आलू की पचनीयता जिस प्रकार आलू पकाया जाता है उस प्रकार पर आश्रित रहती है। अच्छी तरह पका हुआ आलू जल्दी हजम होता है। अंगार पर भुना हुआ या पानी में उबाला हुआ आलू आसानी से हजम हो जाता है। तेल में तला हुआ दुष्पाच्य हो जाता है। आलू को पानी में उबालना हो तो छिलके समेत उबालना चाहिये, नहीं तो उसके लवण पानी में नष्ट हो जाते हैं।

आलू का सेवन विशेष करके उसमें जो पोटयाशिअम का क्षार होता है उसके लिये किया जाता है। इसलिये आलू मांसाहारी लोगों के लिये जितना जरूर है उतना शाकाहारी लोगों को लिये नहीं है। क्योंकि

शाकाहारी लोग दूसरे शाक सब्जियों में से बहुत पोटयाशिअम क्षार भीतर लेते हैं। आलू कभी भी अंकुरितावस्था में नहीं खाना चाहिये, क्योंकि उसमें सोल्यानिन (Solanin) नामक विष पैदा होता है। यदि खाना हो तो अंकुरों को जड़ से निकालकर खाना चाहिये। खेती से ताजा निकाला आलू का भी सेवन नहीं करना चाहिये। आलू के बेल की पत्ती तथा फूल भी विषैले होते हैं।

रतालू—इसमें कार्बोहाइड्रेट अधिक होते हैं और उसमें १० भाग शर्करा के रूप में होने के कारण आलू की अपेक्षा अधिक मीठा रहता है। आरोरूट सागू दूध के साथ पकाने से सुपाच्य और रोगियों के लिये लाभदायक होते हैं। खाद्य-द्रव्यों में सबसे अधिक पचन होनेवाले द्रव्यों में इनकी गणना है।

शाकवर्ग

इनमें पौष्टिकांश बहुत कम होता है, तथापि इनमें जो खनिज क्षार होते हैं उनके लिये इनका उपयोग आहार द्रव्यों में किया जाता है। ये क्षार प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट इत्यादि से रक्त जो अम्ल होता रहता है उसको अलकलाईन बनाने में सहायभूत होते हैं। जीव रक्षा होने के लिये रक्त अलकलाईन होना चाहिये, यदि अम्ल हो तो अम्ल-रक्तता (Acidosis) नामक रोग होता है। इसका दूसरा उपयोग यह है कि इनमें सिल्युलोज की राशि ज्यादा होने के कारण आँतों में हलचल पैदा करके ये मलावरोध को हटाते हैं।

सृष्टमूत्रपुरीषाणि। सुश्रुत।

इनमें पोटयाशिअम के क्षार ज्यादा होने के कारण ये मूत्रल तथा

पथरी के लोगों के लिये पथ्यकर है। इनमें स्कर्वी प्रतिषेधक गुण भी है। भोजन में इनके सेवन से खुशबू भी बहुत आती है और भोजन स्वादिष्ट लगता है। इनमें कार्बोहाइड्रेट बहुत कम होने के कारण मधुमेह से पीड़ित लोगों के लिये बहुत पथ्यकर हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भोजन में साग सब्जियों का होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिये इनके सेवन में कुछ बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये। शाग भाजी हमेशा ताजी सेवन करना चाहिये, अगर ताजी न मिले तो न खाना बेहतर है। बासी या सड़ी गली तरकारी खाना ठीक नहीं। सामान्यतः मकान के आस पास के गंदे पानी से साग तयार होती है इसलिये उस पर हमेशा कीड़े मकोड़े बैठते हैं तथा अंडा देते हैं, इसलिये कच्ची साग बिना अच्छी तरह से धोये नहीं खाना चाहिये। तरकारी चीरने के पहिले उसमें घास पात कीड़ा मकोड़ा इत्यादि को अच्छी तरह से देख भाल करना चाहिये। तरकारी चीरने में भी ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि किसी भी तरकारी का सब भाग हमारे काम में नहीं आता। इसलिये बे-काम भाग निकालकर तरकारी को चीरना चाहिये।

प्रधान प्रधान शाग और उनकी घटना।

साग	जल	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	मेद	क्षार
गोभी	८९·६	१·८	६ ९	०·४	१·३
फूलगोभी	९०·७	२·२	५·९	०·४	०·८
टोमाटो	९४·३	०·९	३·९	०·४	०·५
ककड़ी	६५·४	०·८	३·१	०·२	०·५

केला	७५·३	१·३	२२·०	०·६	०·८
कोहड़ा	९३·१०	०·९	३·६२	१·०	०·७

टोमाटो—शाकवर्ग में आरोग्य के दृष्टि से टोमाटो जिसे विलायती बैंगण कहते हैं बड़ी महत्व पूर्ण साग है। अन्य तरकारियों कि भांति जन साधारण में इसका आदर नहीं होता तथापि इसके गुणों का विचार करके यह कहना जरूर है कि इसका अधिक आदर और प्रचार होना अत्यंत आवश्यक है। इसकी सामान्य घटना ऊपर दी गयी है। तथापि इसकी विशेष महती इसमें जो जीव द्रव्य पाये जाते हैं उन पर है। पांच या छः प्रकार के जीव द्रव्य हैं उनमें से तीन प्रकार के द्रव्य टोमाटो में पाये जाते हैं। इस कारण से बेरी बेरी, स्कर्व्ही, रिकेटस इत्यादि रोग जो इन जीव द्रव्यों के कमी से पैदा होते हैं, टोमाटो इन रोगों में तथा इन रोगों का प्रतिबंधन करने के लिये विशेष पथ्यकर है। सिवा जीव द्रव्य के, लोह, खटिक आदि क्षार अन्य पदार्थों की अपेक्षा टोमाटो में अधिक पाये जाते हैं। पक्के फल की अपेक्षा कच्चे फल की चटनी अधिक लाभदायक है। इसका स्वाद जरा कसैला होता है तथापि नमक मसाला चीनी इत्यादिक के साथ इसकी रुचि बहुत बढ़ जाती है। इसके ताजे फलों में ही नहीं सूखे फलों में भी जीव द्रव्य होते हैं, इसलिये इनको सुखाकर रख सकते हैं। यह शाक बहुत महंगी नहीं है और हर एक मनुष्य इसका सेवन कर सकता है।

फूलगोभी सब शाकों में पचन में हलकी है और अग्निमांद्य रोगी के लिये हितकर हैं।

केला—यह एक बड़ा पौष्टिक खाद्य है। कच्चा अवस्था में केला

तरकारी के स्वरूप में खाया जाता है। और यह तरकारी अतिसार प्रवाहिका इत्यादि आंतों के रोग में हितकर होती है, क्योंकि केला आतों में जंतुनाशन का काम करता है। सामान्यतया केला में प्र० श० १·१५ अल्यूमिन, १·८७ मेद, १६·८२ कार्बोहाइड्रेट, ०·५० सेल्युलोज, ०·२७ फास्फारिक अम्ल होता है। कच्चा या पक्का अवस्था में केला पौष्टिक खाद्य है और ३ अच्छी तरह पके हुए केले और डेढ़ सेर दूध एक मनुष्य के लिये एक समय का उत्तम आहार हो सकता है।

फलवर्ग

खाद्य द्रव्यों में फल एक महत्व का वर्ग है। इसमें फलशर्करा (Laevulose and dextrose), फ्रूट जेली, सेंद्रिय वानस्पतिक अम्ल-यथा सायट्रिक, आग्झालिक, म्यालिक, टार्टरिक या तो विशुद्ध रूप में या सोडियम, पोटयाशियम क्यालसीयम इत्यादिक के साथ क्षार के रूपमें पाये जाते हैं। इनमें खुशबू भी बहुत होती है। इनके खाद्य फल और खुशबूदार फल ऐसे दो वर्ग किये जाते हैं। इनका पौष्टिकांश फलशर्करा नामक कार्बोहाइड्रेट पर आश्रित रहता है। मधुमेही फलशर्करा हजम कर सकता है इसलिये मधुमेही रोगियों के लिये फल पथ्यकर होते हैं। फल हमेशा ताजे और पके हुए खाना चाहिये। कच्चे या सड़े गले नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इनके सेवन से अतिसार प्रवाहिका होने की संभावना होती है। फल में एक फायदा ऐसा है कि इन्हें प्राकृतिक अवस्था में खा सकते हैं। दूसरा फायदा यह है कि इनका गुदा अर्ध पाच्य अवस्था में होने के कारण पचने में हलके होते हैं। सिवा दूध के दूसरे पदार्थ हम बिना भुजे या पके नहीं खा सकते, तथापि दूध

दूषित होने की संभावना बहुत होती है। परंतु फलों में यह डर नहीं है। केवल ताजे और पके हुए फल खाना चाहिये और खाने के पहिले अच्छी तरह से धोना चाहिये। फलों में नारंग, नींबू, अनार, आम, पपीता इत्यादि प्रमुख है।

नारंग—मधुर, रुचिकारक, शीतल, अग्नि दीपक, अरुचि, वमन इत्यादि व्याधियों के लिये पथ्यकर है। इसका विशेष गुण स्कर्व्ही प्रति-षेधक है, क्योंकि इसमें जीवद्रव्य सी काफी तादाद में होता है। इसका छिलका अग्नि-दीपक और खुशबूदार है। नारंगी के रस में प्र० श० १०.९ ठोस पदार्थ होते हैं, उसमें सायट्रिक असीड १.७ शर्करा ७.६ क्षार ०.५२, फास्फारिक असिड ०.०२७ होता है।

नींबू—इसमें सायट्रिक, म्यालिक, फास्फारिक अम्ल विशुद्ध तथा सोडिअम और पोटयाशिअम के साथ मिले हुए क्षार के रूप में मिलते हैं। यह शीतल, उद्दीपक, तृषाशामक और अग्नि-दीपक है। गरमी के मौसम में तथा ज्वरितावस्था में इसका शर्बत बड़ा समाधानकारक होता है। नींबू का रस खून में अलकलाईन सायट्रेट के रूप में जज्ब होता है। स्कर्वी तथा आमवात में इसका रस विशेष उपयोगी है। नींबू के रस के प्रभाव से विषूचिका तथा आंत्रिक ज्वर के जीवाणु शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, इसलिये जब विषूचिका और आंत्रिकज्वर जारी रहता है उस समय पीने के पानी में नींबू का रस डालकर पीना पथ्यकर है।

मंदानाले बद्ध गुदे प्रदेयं विषूचिकायां मुनयो वदंति ॥भावप्रकाश॥

नींबू का रस अग्नि-दीपक है, इसलिये जिनकी पाचक-शक्ति दुर्बल है उनके लिये भोजन करने पर नींबू का सेवन पथ्यकर है। नींबू का रस

पाचक-रस को भी उत्तेजित करता है इसलिये मांसमछली पर थोड़ा इसका रस डालने से इनके पचन में बहुत सुविधा होती है।

जंबीरः कफवातघ्नः कृमिघ्नो भुक्तपाचनः।
रोचनो दीपनस्तीक्ष्णः सुगंधिर्मुखशोधनः॥ चरक॥

आम—इस फल को संस्कृत में आम्रफल या अमृतफल कहते हैं। सामान्यतः फलों का सेवन गरीबों से नहीं हो सकता क्योंकि वे बहुत महंगे होते हैं, तथापि आम एक ऐसा फल है कि जिसका सेवन गरीबों से अमीरों तक को हो सकता है। इसकी बराबरी करनेवाला संसार में दूसरा फल नहीं है। सब फलों का यह मुकुटमणि है और जैसा मधुर है वैसा ही गुणप्रद है। कच्चे आम की घटना।

जल	९०·६६	लवण	०·२७
प्रोटीन	०·५६	अम्ल भाग	१·९३
कार्बोहाइड्रेट	३·३८		

कच्चे आम के इन सब उपादानों में खट्टापन ही आम की विशेषता है। इसमें टार्टरिक, सायट्रिक और मेलिक असिड विद्यमान होते हैं। कच्चा आम चटनी, खटाई, लौंजी इत्यादि काम में आता है और यदि ताजा हो तो नमक के साथ भी खाया जाता है। आम को भूनकर उसमें पानी और चीनी डालकर पन्ना या झोल बनाया जाता है जो बहुत रूचिकर होता है। गरमी के मौसम में जब कड़ी लूह (Hot winds) चलती है तो गरमी का संताप मिटाने के लिये लोग आम का नमकीन और मीठा पना काम में लाते हैं। जब किसी को लूह लग जाती है तब भुने आम का गुदा उसके शरीर में मलने से तथा उसका पना पिलाने से

रोगी को आराम होता है। कच्चे आम में स्कर्व्ही नामक रोग नाश करने की शक्ति है। इसीलिये जहाजों पर आमचूर आजकल नींबू के स्थान में बहुत काम में लाया जाता है, क्योंकि यह नींबू की अपेक्षा सस्ता मिलता है और बहुत दिन तक बिघड़ता नही। कच्चा आम आमाशय में अम्लत्व की वृद्धि करता है, इसलिये अम्लपित्त के रोगी के लिये अपथ्यकारक है। सर्दी, खांसीवालों के लिये भी इसका सेवन हानिकारक है।

पक्का आम—इसके रासायनिक घटक ये है।

प्रोटीन	१ · २०	क्षार	१ · २३
मेद	० · ७५	जल	७'१ · ५०
कार्बो हाइट्रेट	१७ · ५८	सिल्युलोज	३ · ७३

पके आम में जितनी ज्यादा रेशा होगी उतनी सिल्युलोज की राशि भी ज्यादा मिलेगी। यह आम का असार भाग है, इसमें किसी प्रकार की पुष्टिकारिता नहीं है। पका हुआ आम बड़ा पौष्टिक और बलवर्धक है और दूध के साथ खाने से उसके ये गुण और भी बढ़ जाया करते हैं। जिनके कोठे कठिन होते हैं, कब्ज रहता है, कठिनाई से शौच होता है उनके लिये आम पथ्यकर है, क्योंकि आम दस्तावर दवा का काम करता है। इस कारण से दस्त मरोड़ अतिसार इत्यादि रोगों से पीड़ित लोगों, के लिये आम खाना हानिकारक है।

दाड़िम—यह एक उत्कृष्ट फल है।

दाडिमं मधुराम्ल कषायं कासवातकफपित्तविनाशि।
ग्राहि दीपनकरंच लघूष्णं शीतलं श्रमहरं रूचिदायि॥

इसके रसमें टयानिक असिड तथा टयानेट और शर्करा होती है,

इसलिये इसका रस कषाय मधुर होता है। इसके छिलके में भी टयानिक असिड टयानेट और पेलेट्राईन (Pelletieriene) नामक एक अलक-लाईड विद्यमान रहता है जिसके कारण से अतिसार प्रवाहिका तथा स्फीत क्रिमियों के लिये यह अक्सीर दवा होता है।

दाडिमत्वक्कृतः क्वाथस्तिल तैलेन संयुतः।
त्रिदिनात्पातयत्येव कोष्ठतः कृमिजालकम् ॥ योगरत्नाकर ॥

द्राक्षा और मुनक्का—द्राक्षारस में द्राक्षाशर्करा, पोट्यांशिअम बायटार्टरेट, चूने का टार्टरेट, म्यालिक असिड और जल होता है। द्राक्षा बहुत पथ्यकारक, शीतल दस्तावर और तृषाशामक है। द्राक्षा के सेवन में उसकी छाल तथा बीज नहीं खाना चाहिये। सूखे द्राक्षा को मुनक्का कहते हैं। इसमें शर्करा ज्यादा और अम्ल कम होता है। दूध के साथ लेने से मुनक्का दस्तावर होती है।

तेषां द्राक्षा सरा स्वर्या मधुरा स्निग्ध शीतला।
रक्तपित्तज्वरश्वास तृष्णादाहक्षयापहा ॥ सुश्रुत ॥

पपीता—Papaya—यह एक बहुत रूचिकर, खुशबूदार और और स्वादिष्ट फल है और इसके गुण इससे भी अधिक हैं। पपया के पेड़ के स्कंध पत्र और फल में एक प्रकार का दूध जैसा रस विद्यमान रहता है, जिसको पपयोटिन (Papayotin) कहते हैं; और इससे पपयिन (Papain) नामक एक द्रव्य भिन्न किया है जो प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और मेद को पचन करने में सहायभूत होता है। इसकी पाचनशक्ति इतनी तीक्ष्ण होती है कि २ रत्ती पपयिन आधे घंटे में ५० तोला दूध हजम कर सकता है। सिवा पपयिन के, प्रोटीन,

कार्बोहाइड्रेट, और मेद पर प्रभाव डालनेवाला कोई पाचक पदार्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। इसलिये अग्निमांद्य, मलावरोध, अम्लपित्त इत्यादि रोगों में पपया बहुत फायदेमंद होता है। कच्चे अवस्था में पपया की तरकारी हो सकती है, और यदि मांस के साथ पका दिया जाय तो मांस जल्दी हजम हो जाता है। स्त्रियों को गर्भावस्था में इसका सेवन नहीं करना चाहिये क्योंकि अत्यंत उष्ण होने के कारण गर्भपात होने की संभावना होती है।

पपयाऽग्निसमा चोष्णा वह्निकृत् पाचनी लघुः।
अग्निमाद्यमम्लपित्तमजीर्णं च विनाशयेत् ॥

बिल्वफल—यह फल अतिसार प्रवाहिका में अत्यंत उपयोगी है। इसका मुरब्बा भी करके रखते हैं।

श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रुक्षोऽग्नि पित्तजित् ॥ भाव प्रकाश ॥

सूखे मेवे (Nuts)

सूखे मेवों में पोष्टिकांश बहुत रहता है। इनकी सामान्य घटना ऐसी है—१५-२० प्र० श० प्रोटीन, ५० से ६० मेद, ९-१२ कार्बो हाइड्रेट, ३ से ५ तक सेल्युलोज, १ खनिजक्षार, ४ से ५ तक पानी। प्रोटीन और मेद ज्यादा होने के कारण इनकी पौष्टिकता मांस के बराबर होती है। इनमें शर्करा जातीय द्रव्य बहुत कम होने के कारण मधुमेही रोगियों के लिये ये पथ्यकर है। इनमें सेल्युलोज जैसा अपाच्य पदार्थ होने के कारण इनको खूब चबा चबाकर खाना चाहिये, नहीं तो ये दुष्पाच्य होते हैं। इस वर्ग के प्रधान मेवे—नारियल, पिस्ता, बादाम, और अखरोट—ये हैं।

नारियल—नारियल बड़ा पौष्टिक खाद्य है । इसकी गरी में प्र० श०

प्रोटीन	५ · ७	क्षार	१ · ७
कार्बोहाइड्रेट	२७ · ९	सेल्युलोज	४ · ४१
मेद	५० · ५	जल	१४ · २

होता है । इसमें रेशादार भाग (सेल्युलोज) तथा स्नेहभाग ज्यादा होने के कारण यह बहुत दुष्पाच्य होता है । निष्पीडन से जो सफेद दूध गरी से निकलता है उसको मुठेल कहते हैं और पौष्टिकता की दृष्टि से यह काडलिव्हर आईल के बराबर होता है ।

नारिकेल फलं शीतं दुर्जरं बस्तिशोधनम् ।
विष्टंभि बृंहणं बल्यं वातपित्तास्रदाहनुत ॥

नारिकेल जल—गरम देशों में नारिकेल का जल बड़ा ही उपकारी है । तृषितों की प्यास और थके-माँदे की थकावट दूर करने के लिये यह अपना सानी नहीं रखता । इसमें नीचे दिये हुए उपादान मिलते हैं ।

जल	९२ · ३२	कार्बोहाइड्रेट	६ · २०
प्रोटीन	· ६२	क्षार	· २६

इसमें स्नेहजातीय कोई द्रव्य नहीं है । यह जल आंतों में सबका-सब सोख जाता है । अम्लपित्त में यह बड़ा पथ्यकर है । ज्वर में पिपासा शान्त करने के लिये भी इसका उपयोग होता है । विषूचिका में रोगी की प्यास शान्त करने के लिये भी इसका उपयोग होता है, क्योंकि आमाशय से यह शीघ्र सोख जाता है । यह जल मूत्रल है इसलिये पथरी, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, सुजाक इत्यादि मूत्र के रोग में पथ्यकर है ।

नारिकेलोदकं स्निग्धं स्वादु वृष्यं हिमं लघु ।

तृष्णापित्तानिलहरं दीपनं बस्तिशोधनम् ।। वाग्भट ।।

पिस्ता—दूसरे मेवे की अपेक्षा पिस्ता अधिक पौष्टिक और सुपाच्य है, तथापि उसका सेवन अधिक मात्रा में नहीं करना चाहिये ।

इसकी घटना—

जल	७ ˙ ४०	कार्बोहाड्रेट	१५ ˙ ६
प्रोटीन	२२ ˙ ६	क्षार	२ ˙ ८०
मेद	५४ ˙ ८		

बादाम—इनमें कडवे और मीठे दो प्रकार होते हैं । उसमें कडवे बादाम का सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसमें एक जहरीला पदार्थ (Glucoside) होता है। मीठा बादाम मधुमेही रोगी के लिये पथ्यकर है।

मेवे की घटना

मेवा	प्रोटीन	मेद	कार्बोहाड्रेट	क्षार
नारियल	५ ˙ ७	५० ˙ ६	२७ ˙ ९	१ ˙ ७
पिस्ता	२२ ˙ ६	५४ ˙ ८	१५ ˙ ६	२ ˙ ८
बादाम	२१ ˙ ०	५४ ˙ ९	१७ ˙ २	२ ˙ ३
अखरोट	१५ ˙ ५७	५७ ˙ ४३	१३ ˙ ०८	१ ˙ ७
मूंगफली	२४ . ५	५० ˙ ०	११ ˙ ७	१ ˙ ८

शर्करा

वृष्याः क्षतक्षीणहिता रक्तपित्तानिलापहाः ।
मत्स्यंडिका खंडसिताः क्रमेण गुणवत्तमाः ।।वाग्भट।।
सार स्थिता सुविमला निःक्षारा च यथायथा ।
तथा तथा गुणवती विज्ञेया शर्करा बुधैः ।। सुश्रुत ।।

गुड़, खाँड़ तथा शक्कर गन्ने के रस से बनवाले पदार्थ हैं। आजकल शर्करा बीटरूट (Beet root), म्यापल वृक्ष (Maple tree), खजूर इत्यादि से भी बनायी जाती है। शर्करा में प्रतिशत ९४ भाग स्याक्यारोज (Saccharose) और २ भाग पानी होता है। गुड़ इत्यादि अशुद्ध शर्करा जातीय पदार्थों में नायट्रोजनयुक्त पदार्थ होने के कारण वे सड़ने लगते हैं। शुद्ध शर्करा सफेत, स्फटिकाकार, सूखी और पूर्ण रूप से जलविद्राव्य होती है। शर्करा उत्तेजक और पोषक है और थकीमांदी अवस्था में सेवन करने से शीघ्र थकावट दूर करती है। आंतों में शर्करा ग्लूकोज और लेव्हयूलोज (Glucose and Levulose) में परिवर्तित होकर उसी रूप में शोषित होती है और इसका जरूरत से ज्यादा भाग यकृत में ग्लायकोजन के रूप में यकृत में संचित रहता है। थकावट दूर करने के लिये शर्करा जैसा दूसरा पदार्थ नहीं है। इस कारण से थकी-मांदी अवस्था में गुड़ या चीनी और पानी अतिथि को देने का प्रघात हिन्दू लोगों में प्राचीनकाल से ही है और यह अत्यन्त शास्त्रशुद्ध है। इसका उपयोग मिठाई तयार करने में बहुत होता है।

यद्यपि शर्करा इतनी गुणदायक है तथापि अतिमात्रा में इसका सेवन करने से शरीर को बहुत सी हानियाँ पहुँचती हैं। इसका अतिसेवन अम्लपित्त पैदा करता है और कार्बोहाइड्रेट जातीय खाद्य-द्रव्यों का एक सामान्य गुणधर्म है।

शालिपिष्टमयं सर्वं गुरु भावाद्विदह्यते ॥

अम्लपित्त के रोगी के लिये शर्करा युक्त मीठा पदार्थ खाना इसी कारण से अपथ्यकर है। दूसरा, इसका अतिसेवन आंत्रगत शर्करा मेह

(Alimentary glycosuria) उत्पन्न करता है। मांस के साथ शर्करा का सेवन हानिकारक है, क्योंकि मांसाहार से शरीर में जो युरीक अॅसीड पैदा होते हैं उनके शरीर के बाहर जाने में शर्करा बाधा डालती है। इसी कारण से वातरक्त में शर्करा सेवन निषिद्ध है।

शहद

नानापुष्पप्रकाराणां रससारात्मकं मधु। हारीत।
तद्युक्तं विविधैर्योगैर्निहन्यादामयान् बहून्।
नाना द्रव्यात्मक त्वाच्य योगवाहीपरं मधु॥ सुश्रुत॥

यह शर्करायुक्त खाद्य-पदार्थ है जो कि मधुमक्खियाँ फूलों की मिठास को लेकर अपने छत्तों में इकट्ठा करती है। शर्करा से इसमें डेक्स्ट्रोज और लेव्हयूलोज अधिक मात्रा में होता है। मधु की संघटना ऐसी है।

जल	१६ · १३	प्र० श०	नायट्रोजनयुक्त भाग	१ · २९	प्र०श०
डेक्-स्ट्रोज	७८ · ७४	,,	क्षार	० · १२	
स्याक्यारोज	२ · ६९	,,			

इनके सिवा फार्मिक असिड, रंजित-द्रव्य, मोम, सुगंधि-द्रव्य, और पुष्पपराग शहद में पाये जाते हैं। सच्ची शहद में यदि अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखा जाय तो पुष्पपराग जरूर दिखाई पड़ते हैं। चतुर लोग शहद में ग्लूकोझ, स्टार्च, शर्करा इत्यादि की मिलावट कर देते हैं।

शहद शर्करा जैसी विदाही नहीं है। मधुमेह से पीड़ित रोगियों के लिये भी यह बहुत पथ्यकारी होती है। इसमें फार्मिक असिड होने के कारण श्वास-नलिका-प्रदाह में भी यह पथ्यकर है। इसमें थोड़ा सारक गुण है और बच्चों के लिये यह ठीक दस्तावर दवा है।

मांस और वनस्पतिवर्ग की तुलना

मॉंस और वनस्पति-वर्ग का वर्णन खूब स्पष्ट रूप से हो चुका है। केवल दोनों वर्गों का तुलनात्मक विवरण संक्षेप में नीचे दिया जाता है जिससे इन दोनों में क्या क्या भिन्नता है यह शीघ्र ध्यान में आ सके।

१. वनस्पति वर्ग में खाद्य-द्रव्यों की जितनी विविधता, विपुलता, और रुचिवैचित्र होता है, उतनी विविधता, विपुलता और रुचिवैचित्र मांस वर्ग में नहीं पाया जाता है।

२. वनस्पति-वर्ग में खाद्य-द्रव्यों के सर्व उपादान तथा जीव-द्रव्य बहुतायत से पाये जाते हैं। शालि जातीय द्रव्य या कार्बोहाइड्रेट वनस्पति-वर्ग में अधिक मात्रा में और आमिष जातीय या प्रोटीन द्रव्य कम मात्रा में पाये जाते हैं। मांस वर्ग में प्रोटीन जातीय द्रव्य अधिक मात्रा में और शालिजातीय बहुत कम या नहीं पाये जाते हैं। संक्षेप में वनस्पत्याहार पूर्णाहार है, मांसाहार पूर्णाहार नहीं हो सकता।

३. सिल्युलोज जैसा दुष्पाच्य पदार्थ वनस्पतिवर्ग में अधिक होने के कारण मॉंसाहार की अपेक्षा वनस्पत्याहार दुगुना लेना पड़ता है।

४ वनस्पत्याहार का पचन आँतों में होता है, मांसाहार का पचन आमाशय में होता है। वनस्पत्याहार मॉंसाहार की अपेक्षा पचने में भारी होता है।

५. मांसवर्ग के द्रव्य पचने में हलके तथा शीघ्र पचन होनेवाले हैं। इसलिये मांसाहार से मनुष्य को फौरन स्फूर्ति मालूम होती है। वनस्पत्याहार देर से हजम होने के कारण स्फूर्ति जल्दी मालूम नहीं होती।

६. लगातार काम करने के लिये जिस प्रकार के शक्ति की जरूरत

होती है वह शक्ति मांसाहार की अपेक्षा वनस्पति आहार से अच्छी तरह से मिल सकती है। मांसाहार से फौरन शक्ति उत्पन्न होने के कारण उसमें से बहुत फजूल खर्च हो जाती है, इस कारण से लगातार श्रम करने में मांसाहारी की अपेक्षा शाकाहारी अधिक सफल होता है।

७. वनस्पतिज खाद्य-द्रव्यों में प्यूरिन (Purin) नामक विष-द्रव्य बहुत ही कम विद्यमान होता है, इस कारण से वनस्पत्याहार मांसाहार की अपेक्षा स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक पथ्यकर है।

८. इस द्रव्य से शरीर में युरिक असिड बहुत तयार हो जाया करता है और इस असिड को शरीर से बाहर निकाल देने का काम वृक्क का है, इस कारण से मांसाहार लगातार सेवन करने से वृक्क खराब होने की संभावना होती है। यदि इससे युरिक असिड बाहर फेंकने का काम ठीक ठीक न होने पाया तो यह विष शरीर में इकट्ठा होकर वात-रक्त जैसा भयंकर रोग पैदा करता है। वनस्पत्याहार से ऐसा रोग होने की संभावना नहीं होती।

९. मांसाहार सामान्यतया ९० प्र० श० सारभूत होकर जज्ब हो जाया करता है और उसमें पाचक रस को उत्तेजित करने की शक्ति है। शाकाहार में दुष्पाच्य भाग ज्यादा है और पाचक रस को उत्तेजित करने की शक्ति माँसाहार से कम है इसलिये शाकाहार का पचन करने में पाचन संस्थान पर बड़ा भार पड़ता है। इससे अग्निमांद्य, आध्मान, अम्लपित्त इत्यादि पचन संस्थान के रोग शाकाहार के लगातार सेवन करने से उत्पन्न होते हैं। मांसाहार में त्याज्य भाग बहुत ही थोड़ा आंतों में रहता है, इसलिये आंतों में चलन वलन बहुत कम होकर मलावरोध होने

की संभावना बहुत रहती है। शाकाहार में सेल्युलोज जैसा दुष्पाच्य भाग बहुत होने के कारण मलावरोध नहीं होता।

१०. वनस्पत्याहार की अपेक्षा मांसाहार से दाँत अधिक खराब होकर पूयदंत रोग (Pyorrhoea alvueolaris) होता है।

११. मांसाहार से वनस्पत्याहार की अपेक्षा आंतों में सडन (Proteolytic fermentation) ज्यादा होता है। मेचनीकाफ और कोंब नामक शास्त्रज्ञों की (Metchnikoff and Combe) यह राय है कि अकाल जरा आने का यह विघटन प्रधान कारण है।

१२. पकाने के बाद वनस्पत्याहार अधिक सुपाच्य और मांसाहार अधिक दुष्पाच्य हो जाता है।

१३. मानसिक श्रम करने वालों के लिये मांसाहार की अपेक्षा वनस्पत्याहार अधिक पथ्यकर होता है। वनस्पत्याहार में बुद्धि की तीव्रता भी अधिक होती है।

१४. मांसाहारी की अपेक्षा वनस्पत्याहारी का स्वभाव सात्विक,स्थिर और शांत होता है।

१५. वनस्पत्याहारी की प्राणशक्ति (Resisting power) मांसाहारी के प्राण-शक्ति की अपेक्षा कम रहती है, इसलिये वनस्पत्याहारी सामान्यत: संक्रामक रोगों के जल्दी शिकार बन जाते हैं।

१६. वनस्पत्याहार रोग की नवावस्था (acute state) वात-रक्त, यकृत के रोग, मस्तिष्कदौर्बल्य (Neurasthenia), धमनीदार्ढ्य तथा दूसरे धमनी के रोग, वृक्करोग इत्यादि रोगों में पथ्यकर है। मांसा-

हार क्षय, अग्निमांद्य, रोगावस्था की दुर्बलता, पाण्डुरोग, स्त्रियों की सगर्भावस्था और बच्चों को दूध पिलाने की अवस्था इत्यादि में पथ्यकर है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि केवल मांसाहार या केवल वनस्पत्याहार शरीर की प्रत्येक अवस्था में पथ्यकर नहीं होता। इसलिये इनके गुण दोषों का पूर्ण विचार करके शरीर की आवश्यकता के अनुसार जिस प्रकार के खाद्य द्रव्यों की जरूरत हो उनका सेवन करना चाहिये, जिससे शरीर का स्वास्थ ठीक रहे।

तच्च नित्य प्रयुंजीत स्वास्थं येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत् ॥ चरक ॥

भारतवर्ष में वनस्पत्याहार की प्रथा अधिक व्यवहार में है, तथापि शरीर के स्वास्थ की दृष्टि से इसमें शरीर की वृद्धि तथा विकासजनक प्रोटीन द्रव्यों की बहुत कमी है। यदि केवल वनस्पत्याहार का सेवन करना हो तो उक्त दोष को जरूर हटाना चाहिये। तीन प्रकार से यह हो सकता है।

१—वनस्पत्याहार को कुछ थोड़ी मांसाहार की मदद देना। मछली और मांस में प्रोटीन द्रव्य बहुत होते हैं। इनका सेवन करने से प्रोटीन की कमी दूर हो जायगी।

२—वनस्पत्याहार को दूध या अंडे की सहायता लेना। भारतवर्ष में वनस्पत्याहारी को दूध एक अत्यंत आवश्यक चीज है। तथापि दिन-बदिन शुद्ध दूध पौष्टिकता की दृष्टि से मिलना दुर्मिल हो गया है। जिनको अंडा खाने में कोई आपत्ति नहीं है उनके लिये दूध से भी अंडा कहीं अच्छा है।

३—जिनके लिये दूध लेना गरीबी के कारण मुश्किल है और जो लोग धार्मिक या जीवदया की दृष्टि से अंडा, मछली, मांस नहीं ले सकते उनको खाद्य द्रव्यों में अरहर उड़द, मूङ्ग इत्यादि दालों का मुक्तहस्त से उपयोग करना चाहिये। इनमें जो प्रोटीन अंश होता है वह मांस जैसा सुपाच्य नहीं होता और अधिक अंश में आतों से जज्ब नहीं होता, इसी कारण से इनका उपयोग मुक्तहस्त से करना चाहिये।

दशम अध्याय

पार्थिव वर्ग

पार्थिवानि तान्युपचयसंघातगौरवस्थैर्यकराणि ॥ चरक ॥

पार्थिव द्रव्य—Minerals—शरीर में कुलठोस भार (Total solids) का $\frac{1}{५}$ भाग खनिज द्रव्य होते हैं। शरीर की वृद्धि, विकास तथा अस्तित्व के लिये इनकी अत्यंत आवश्यकता है। खनिज-द्रव्य-विहीन आहार अनाहार से भी शरीर को शीघ्र मारक होता है। इनमें प्रधान प्रधान खनिज द्रव्य ये हैं—गंधक, फास्फरस, पोटयाशिअम, म्याग्नेसिअम, क्यालसिअम, लोह, सोडिअम, सिलिकान, म्यांग्यानीझ, क्लोरिन, आयोडिन, फ्लोरिन। ये सब द्रव्य शरीर के तमाम धातु, पाचक रस, स्राव इत्यादि में पाये जाते हैं। शरीर में खनिज-द्रव्य करीब करीब ७ पौंड होता है, उसमें से ८३ फी सदी अस्थियों में और बाकी १७ फी० सदी दूसरे अवयवों में होता है। शरीर से रोजाना बीस ग्राम (डेढ़

तोला) खनिज-द्रव्य-मल स्वरूप बाहर निकल आता है, फलतः उतने ही या उससे कुछ अधिक खनिज द्रव्य की जरूरत शरीर को होना आवश्यक है। हर एक द्रव्य की रोजाना कितनी आवश्यकता होती है यह नीचे तालिका में दिया है।

फास्फारिक असीड	३–४ ग्राम	क्यालसिअम	·०७–१ ग्राम
सल्फ्यूरिक असिड	२–२½ ,,	म्याग्नेसिअम	०·३–०·५ ,,
पोटयाशिअम आक्साइड	२–३ ,,	क्लोरिन	६–८ ,,
सोडिअम	४–५ ,,	लोह	·००६–·०१२ ,,

लवण—खनिज द्रव्यों में लवण (Sodium chloride) सर्व प्रधान है। रक्त के क्षार में यह ६० प्र० श० होता है और सिबा दांतों के कवच के (Enamel) तमाम धातु में पाया जाता है। समुद्र का अशुद्ध नमक क्लोरिन, ब्रोमिन, फ्लोरिन, आयोडिन, इत्यादि खनिज द्रव्य होने के कारण अधिक पथ्यकर है। नमक से ही जाठररस का उत्तेजन होकर, उसमें विद्यमान होनेवाले हायड्रोक्लोरिक असिड उत्पन्न होता है। सोडिअम की ही सहायता से रक्त धातुओं में तयार हुआ कार्बानिक असिड ग्यास को सोखकर शरीर के बाहर फुफ्फुस में छोड़ देता है और रक्त की शुद्धि करता है। यदि सोडिअम की राशि रक्त के जलांश में कम हो जाय तो यह काम ठीक तौर से नहीं होगा और स्वास्थ्य की हानि हो जायगी। इसी कारण से खून में नमक इतनी अधिक मात्रा में मिलता है। शरीर के भीतरी सेलों में पोषक-रस की जो अदला-बदली (Osmosis) होती रहती है वह भी नमक की सहायता से ही हुवा करती है।

प्रति दिन मनुष्य को ६ से ८ ग्राम (आधा तोला) नमक की जरूरत है और शाकाहारी को कुछ थोड़ी अधिक हुवा करती है।

वृक्क के द्वारा शरीर के जहरीले पदार्थ बाहर निकलवाने में भी लवण बहुत सहायभूत होता है। तथापि अधिक मात्रा में इसका सेवन स्वास्थ हानिकारक है। इससे प्यास अधिक मालूम होती है और वृक्क चिढ़कर (Irritate) शरीर में शोथ पैदा होती है, इस कारण से शोथ, जलोदर इत्यादि शोथयुक्त विकारों में नमक का सेवन नहीं करना चाहिये।

लवणं ··श्वयथुगद्वान् वर्जयेत् ॥चरक॥

नमक के गुणधर्मों का विवरण सुश्रुत में ऐसा दिया है।

लवणः संशोधनः पाचनो विश्लेषणः क्लेदनः शैथिल्यकृदुष्णः सर्वरस प्रत्यनीको मार्ग विशोधनः सर्वशरीरावयवमार्दवकरश्चेति। स एवं गुणोऽप्यकएवात्यर्थमासेव्यमानो गात्रकंडूकोठशोफ वैवर्ण्य पुंस्त्वोपघातेंद्रियोपतापमुखाक्षिपाकरक्तपित्तवातशोणिताम्लिका प्रभृतिनापादयति ॥

पोटयाशिअम—इसके क्षार भी शरीर के तमाम धातुओं में पाये जाते हैं। इसका एक विशेष कार्य यह है कि ये क्षार शरीर के धातुओं को तथा धमनी को मृदु रखते हैं। यदि इस क्षार की कमी हो जाय तो धमनी की दीवाल में खटिक का संचय (Calcification) होकर धमनीदार्ढ्य (Arterio-scelrosis) नामक रोग होता है।

क्यालशिअम—क्यालशिअम और म्याग्नेसिअम फास्फेट यद्यपि शरीर के दूसरे अवयवों में होते हैं, तथापि अस्थियों में सबसे ज्यादा होते हैं। शरीर में जितना क्यालसिअम पाया जाता है उसमें से ९९·५

प्रतिशत केवल अस्थियों में मिलता है। तस्मात् शैशवावस्था में, जो कि शरीर के वृद्धि और विकास का समय होता है, यदि क्यालशिअम की खाद्य-द्रव्यों में कमी हो जाय तो अस्थिमृदुता (Rachitis) इत्यादि रोग बालकों में पैदा होते हैं। प्रौढ़ मनुष्यों में यदि इसकी कमी हो तो अस्थि सुषिर हो जाते हैं। बच्चों को प्रतिदिन ५ ग्राम क्यालसिअम की आवश्यकता होती है और यह आवश्यकता माता के दूध से पूरी होती है। रक्त जब शरीर के बाहर आता है तो हवा के संसर्ग से वह एक दम जम जाता है। इस क्रिया में क्यालसिअम ही सहायभूत होता है। यदि खून में इसकी कमी हो तो खून चिरस्रावी बनता है और जल्दी जम नहीं जाता। इसी कारण से जब शरीर के बाहर या भीतर रक्तस्राव होता है, तथा हीमोफायलिआ (Haemophilia) जैसे रोग में जहाँ रक्त चिरस्रावी रहता है, क्यालसिअम के क्षार देने की प्रथा है। क्यालसिअम के क्षार खाद्य-द्रव्यों में से शरीर को मिलते हैं, तथापि विशेष प्रमाण में नीचे दिये हुए पदार्थों में अधिक रहते हैं।

स्त्री का दूध	० · २४३	प्र० श०	वाटाणा	० · १३७
गौ का दूध	१ · ५१०	,,	आलू	० · १००
अण्डा का बलग	० · ३८०			

फास्फरस—फास्सरस और उसके यौगिक नाड़ीसंस्थान (Nervous system) और धातुओं के सेलों के केंद्र के (Cell-neuclei) महत्व के घटक होते हैं। इनके सिवा ये अस्थि, गलग्रन्थि और जननग्रन्थियों में (Sexual glands) पाये जाते हैं। प्रतिदिन मनुष्य को १–२ ग्राम फास्फरस की आवश्यकता होती है। बालकों को इससे

अधिक आवश्यकता है। खाद्य-द्रयों में से नीचे दिये हुए पदार्थों में फास्फरिक असिड पाया जाता है।

दूध	० · २२० प्र० श०		मांस	० · ४२५ प्र० श०
अण्डा	० · ३३७	,,	बाटाणा	० · ९९
ताजापनीर	० · ३७४	,,	आलू	० · ९९

लोह—रक्त के लाल दाने का (Red blood corpuscles) लोह एक आवश्यक घटक है। सिवा लोह के लाल दाने शुद्ध हवा से प्राणवायु अपने भीतर सोखने का काम नहीं कर सकते। सामान्यतः ७० किलोग्राम (१५४ पौंड) वजन के मनुष्य के शरीर में लोह ३ · १ से ३ · ३ग्राम होता है, उसमें से केवल रक्त में २ · ४–२ · ७· पाया जाता है। लोह नीचे दिए हुए पदार्थों में विशेष प्रमाण में पाया जाता है।

अण्डा	० · ००१ प्र० श०		आलू	० · ०६४ प्र० श०,	
सेव	० · ०१३	,,	द्राक्ष	० · ०५६	,,
बादाम	० · ००२५	,,			

फ्लोरिन—शरीर में यह द्रव्य, दंतकवच, पृष्ठवंश की हड्डियाँ और आँखों की कनीनिका में पाया जाता है। खाद्य-द्रव्यों में यह शूकधान्यों से शरीर को मिलता है।

———

एकादश अध्याय

मसाले और अचार

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरुक्षविदाहिनः ।
आहाराः ………………… आमयप्रदाः ॥ गीता ॥

मसाले, अचार, चटनी इत्यादि नमकीन, खट्टे तथा चरपरी चीजों की शरीर के संचालन के लिये आवश्यकता नहीं है। न तो इनसे शरीर की वृद्धि और विकास होता है और न शक्ति उत्पन्न होती है। तथापि भोजन में इनके सेवन से रुचि उत्पन्न होती है, भूक ज्यादा लगती है, अन्न पचने में कुछ सहायता होती है, और आतों में कुछ जंतुनाशन का काम भी होता है, इसलिये आध्मान तथा पेट की मरोड़ में फायदा होता है। ये सब पदार्थ मस्तिष्कगत विविध केंद्रों को उत्तेजित करके उनकी सहायता से अपना काम किया करते हैं। उनके सेवन से पाचन यंत्रों को उत्तेजना मिलकर पाचक रस अधिक मात्रा में निकलता है, आंतों में चलन वलन (Peristalisis) अधिक होने लगता है और भूक अधिक मालूम होकर पचन भी ठीक होता है। तथापि स्वास्थ्यावस्था में इनकी क्या आवश्यकता है यह प्रश्न विचारणीय है। जो मनुष्य स्वास्थ्य के नियमानुसार आपना आहार विहार रखता है उसको ऐसे उत्तेजक द्रव्यों की जरूरत नहीं पड़ती। रोग मुक्त होने के बाद जब जठराग्नि मंद हो जाता है तब भोजन में रुचि लाने के लिये तथा पचन में मदद करने के लिये इनका थोड़ा उपयोग करना ठीक है। तथापि स्वस्थ मनुष्यों के लिये इनका प्रतिदिन भोजन में उपयोग करना स्वास्थ्य हानिकारक है।

इनका लगातार सेवन करने से पाचनशक्ति थोड़े दिन तक बढ़ती हुई प्रतीत होती है, परंतु थोड़े ही दिनों में अग्निमांद्य, अम्लपित्त इत्यादि पाकस्थली के रोग आपना डेरा जमाने लगते हैं। चलते हुए घोड़े को खूब कोड़े लगाने से जो परिणाम होता है वही परिणाम इनके सेवन से पाचन यंत्रों के संबंध में होता है। कोड़ों की मार से घोड़ा भरसक अधिक भागता है, परंतु इस मार में उसमें बल नहीं आता, बल्कि थोड़ी ही दूर जाकर थक जाता है। इसी प्रकार मसालों के सेवन से पाचन यंत्र शक्ति से अधिक काम करने लगता है, जिसे सर्व साधारण लोग भूल से क्षुधावृद्धि समझते हैं, पर इस प्रकार अधिक काम करने से पाचन शक्ति शीघ्र थक जाती है और आपना नियत कार्य नहीं कर सकती। अतएव इनका सेवन जहाँ तक हो सके नहीं करना चाहिये, तथा कारणवश करना पड़े तो थोड़ी मिकदार में तथा बीच बीच में करना चाहिये। सर्वदा मसाले के सिवा भोजन सेवन करने का अभ्यास रखना स्वास्थ्य-प्रद है।

पचने में यदि भारी मिष्टान्न हो, तो उसके साथ कुछ थोड़ा मसाला चटनी इत्यादि पदार्थ खाने से उसके पचन में कुछ सहाय होता है, परंतु खाते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि मसाले के कारण से मिष्टान्न का अधिक सेवन न हो। क्योंकि मिष्टान्न तथा मसाले दोनों को भी हद्‌से भीतर खाना चाहिये।

मसाले के दो प्रकार होते हैं, एक सादा मसाला और दूसरा गरम मसाला। सादा मसाला थोड़ी मिकदार में सेवन करना हानिकारक नहीं है पर गरम मसाला सेवन करना हानिकारक है। भारतवर्ष में

मसाले में ये चीजें डाली जाती है। लालमिर्च, धनिया, जीरा, हलदी दालचिनी, काली मिर्च, राई, केसर, लौंग, जायफल, इलायची, जायपत्री, तेजपात, इमली, मेथी, हिंग, अदरख सोंठ इत्यादि। इनमें धनियां जीरा, इलायची, अदरख, सोठ, हींग, इमली इत्यादि सादे मसाले में और लालमिर्च, राई, लौंग, दालचीनी इत्यादि गरम मसाले में आते हैं।

मसाले से भोजन में स्वाद आता है यह बात ठीक है, तथापि यह स्वाद कृत्रिम और हानिकारक है। भोजन को चबा चबाकर खाने से जो स्वाद पैदा होता है वह स्वाद ठीक और स्वास्थ्यकर है। इसलिये भोजन में मसाले डालकर स्वाद पैदा करने के बजाय, चबा चबाकर स्वाद पैदा करने का अभ्यास करना चाहिये। एक दफे मनुष्य को मसाले के साथ भोजन करने की आदत पड़ गयी तो फिर स्वास्थ्य की हानि होने पर भी ऐसी कुटेव से छुटकारा होना मुश्किल हो जाता है, सिवा मसाले के उसको भोजन में रुचि प्रतीत नहीं होती, इसलिये प्रथम से ही बिना मसाले डालकर सादा भोजन सेवन करने का अभ्यास हर एक मनुष्य को रखना स्वास्थ्यप्रद है।

द्वादश अध्याय

अनुपान वर्ग

अनुपानं करोत्यूर्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढ़ांगताम्।
अन्नसंघातशैथिल्यविक्लित्तिजरणानिच ॥वाग्भट॥

अनुपान द्रव्य—(Beverages)— जिसकी सहायता से भोजन

में स्वाद तथा आसानी होकर उसके पचन में मदत होती है, ऐसे द्रव्य को अनुपान द्रव्य कहते हैं। ये द्रव्य तीन वर्ग में विभक्त किये गये हैं।

१. जलवर्ग, २. चायवर्ग, ३. मद्यवर्ग।

जलवर्ग—जलवर्ग में जल और खनिज जल का (Mineral water) समावेश होता है। सब अनुपान द्रव्यों में पानी सबसे प्रधान तथा सर्वश्रेष्ठ अनुपान है।

सर्वेषामनुपानानांमाहेन्द्रं तोयमुत्तमम् ॥ सुश्रुत।

अर्थात् पानी माहेन्द्र जल या माहेन्द्र जल जैसा विशुद्ध होना चाहिये। शरीर के स्वास्थ्य के लिये पानी की कितनी आवश्यकता है यह पीछे (पृष्ठ ११० में) बतलाया गया है। जल के विषय में यह आवश्यक बात ध्यान में रखना चाहिये कि उसका शोषण आमाशय में नहीं होता, वहाँ पहुँचते ही पानी नीचे आंतों में जाने लगता है, और जिस शीघ्रता से पानी नीचे जाता है उसके कारण जल वाह्य (Water borne) संक्रामक रोग का प्रभाव शरीर पर होने में दूषित जल अधिक मारात्मक होता है कारण दूध आमाशय से आंतों में तीन से चार घंटे में जाता है, और पानी एक घंटे के अन्दर जाता है।

भोजन के साथ पानी का क्या संबंध होना चाहिये, इसके बारे में पीछे बहुत कुछ (पृष्ठ ९६ में) कहा गया है; इसलिये उसकी पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है। संक्षेप में यह कहना पड़ता है कि पानी एक नैसर्गिक अनुपान द्रव्य है, जिसके यथाशास्त्र सेवन से दूसरे अनुपान द्रव्य जैसे शरीर में कोई हानि होने की सम्भावना नहीं है।

इसलिये यदि किसी अनुपान द्रव्य का उपयोग करना हो तो पानी का ही करना चाहिये ।

खनिज जल—(Mineral water)—ये कृत्रिम और नैसर्गिक होते हैं। उनमें सोडिअम, पोटाशिअम, लिथिअम, म्याग्नेसिअम इत्यादिक के क्षार तथा कार्बोनिक असिड ग्यास घुला रहता है। नैसर्गिक जल में जो क्षार विद्यमान रहते हैं कृत्रिम जल में वे ही क्षार डालकर कार्बोनिक आसिड ग्यास को भी घुलाते हैं। केवल जिस जल में CO_2 वायु घुला रहता है उसको Aerated water कहते हैं। इसका आविष्कार सर्वप्रथम प्रीस्टले नामक शास्त्रज्ञ ने किया है।

खनिज या CO_2 युक्तजल से पचन के रासायनिक तथा चलन वरुनादि क्रिया में सहायता होती है। दूध में डालने से दूध की पेट में जमने की क्रिया विरल होकर पचने में सुविधा होती है। यह जल तयार करने के लिये हमेशा उबाला हुआ या तिर्यक्पातित पानी का उपयोग करना चाहिये, नहीं तो ऐसा खराब पानी से तयार किया हुआ जल सेवन करने में धोखा रहता है। केवल विषूचिका के जीवाणु CO_2 युक्त पानी में नहीं जिन्दे रह सकते, इस कारण से हैजे की बीमारी जब जारी रहती है तो यदि अच्छी तरह से उबाला हुआ पानी न मिले तो सोडावाटर पीना चाहिये।

चायवर्ग

चा—Tea—आजकल चा भारतवर्ष में नित्य व्यवहार की चीज हो गयी है। यह क्यामेलिया थीया (Camellia Thea) नामक वनस्पति के पत्तों को सुखा कर बनायी जाती है। यह वृक्ष चीन जापान

इत्यादि देशों में बहुतायत से पैदा किया जाता है, और हाल में भारतवर्ष में दार्जिलिंग, आसाम, निलगिरी इत्यादि स्थानों में भी होता है। चाय की घटना।

थीन	१.८ प्र-श	सेल्युलोज	२२.०प्र०श०
अल्ब्यूमिन	२.६ ,,	टयानिन	१५ ०प्र०श०
डेक्स्ट्रिन	९.७ ,,	क्षार	५.४प्र०श०

इसमें मुख्य थीन (Theine) या क्याफीन (Caffeine) नामक अल्कलाइड है और यह टयानिन के साथ मिला रहता है और इसकी मात्रा प्रत्येक प्रकार के चाय में भिन्न भिन्न होती है। उबालते पानी में डालने से थीन घुलने लगता है परंतु टयानिन थोड़ी देर के बाद घुलने लगता है और ज्यादा देर तक उबाला जाय तो उसकी मात्रा बहुत घुल जाती है।

चाय का सेवन हमेशा फांट (Infusion) के स्वरूप में ही करना चाहिये। इसके क्वाथ का सेवन हानिकारक होता है। उबालने का चाय पर क्या क्या असर होता है यह नीचे तालिका में दिया है।

द्रव्य	पाँच मिनिट	दस मि०	बीस मि०	चालिस मिनिट
सत्	२१ ˙ ७	२५ ˙ ३	२६ ˙ ८	२८ ˙ १
क्याफीन	१ ˙ १	१ ˙ ३	१ ˙ १६	१ ˙ २५
ट्यानिकअसिड	६ ˙ ८	८ ˙ ५	११ ˙ ७	१६ ˙ ३
नाट्रोजन	१ ˙ ११	१ ˙ १५	१ ˙ ११	१ ˙ ०४
क्षार	३ ˙ ५२	४ ˙ ०९	४ ˙ १५	४ ˙ ४८

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि जितनी ज्यादा देर तक चाय उबाली जायगी उतनी ट्यानिक असिड की मात्रा अधिक बढ़ेगी, क्याफिन नामक उत्तेजक द्रव्य है उसमें कोई विशेष फर्क नहीं होता। ट्यानिन एक ऐसा द्रव्य है जिसमें पौष्टिक गुण कुछ भी नहीं है। यह कषाय रस का द्रव्य होने के कारण श्लेष्मल त्वचा के साथ संपर्क आने से उसको सख्त बना देकर अन्न-रस शोषण करने की शक्ति कम कर देता है। इससे मला-वरोध की भी शिकायत होती है। भोजन के साथ भी चाय अधिक नहीं सेवन करना चाहिये। क्योंकि वह आहार को दुष्पाच्य बना देती है। चाय में क्याफीन नामक जो दूसरा द्रव्य है वह उत्तेजक, दिमाग को तरावट देनेवाला, मूत्रल तथा हृद्य है। चाय पीने से नींद नहीं आती, इसका कारण मस्तिष्क की उत्तेजना है। वृक्क के रोगी के लिये भी चाय हानिकारक है।

यदि चाय लेना हो तो उसकी पत्तियाँ उबालते पानी में डालकर चार मिनिट के बाद उसको गालकर लेना चाहिये। चाय में दूध डाल कर पीना ठीक है, क्योंकि दूध से चाय का नशा कम हो जाता है और दूध पचन में सहायता होती है। इसलिये जिन्हें दूध हजम नहीं होता उन्हें चाय के साथ दूध देने से पचने में आसानी होती है। यदि चाय माफि-कसर उचित मात्रा में पी जाय तो वह उत्तेजक है परन्तु अधिक मात्रा में सेवन करने से मलावरोध, अग्निमांद्य, अजीर्ण, अनिद्रा, वृक्क के रोग, शारीरिक और मानसिक दुर्बलता इत्यादि पैदा होती है। चाय में कुछ गुण है तथापि उसमें नशा है, इसलिये जिसको एक दफे चाय पीने की आदत पड़ गयी उसकी आदत छूटना बहुत मुश्किल हो जाता है। इस

कारण से तंदुरुस्त अवस्था में जहाँ तक हो सके चाय का सेवन नहीं करना चाहिये ।

कॉफी—यह क्याफी अरेबिका नामक (Caffea Arabica) वृक्ष के बीज से बनाई जाती है । इसके वृक्ष अरब, अबिसीनिया, दक्षिण भारत और अन्य देशों में होते हैं । इसका मुख्य प्रभावजनक द्रव्य क्याफीन नामक है, और इसके सिवा मेद, शर्करा, नाट्रोजन युक्त द्रव्य, क्षार इत्यादि भी होते हैं । वृक्ष के बीजों को भूनकर चूर्ण के रूप में कॉफी होती है । भूनने से उसमें क्याफिऑल (Caffeol) नामक खुशबूदार तैल पैदा होता है, जिसके कारण से कॉफी खुशबूदार मालूम होती है । बहुत दिन रखने से यह खुशबू हवा हो जाती है, इसलिये बीज भुनने के बाद जल्दी कॉफी का सेवन करना चाहिये । इस चूर्ण का क्वाथ बनाकर उसमें दूध चीनी मिलाकर कॉफी का सेवन किया जाता है, परन्तु यदि काफी की खुशबू रखना हो तो क्वाथ बनाने के बजाय फॉंट बनाना ही अच्छा है ।

कॉफी का असर मस्तिष्क पर चाय जैसा ही होता है, क्योंकि दोनों का प्रभावकारक घटक क्याफीन नामक एक ही अलकलाइड है । तथापि कॉफी में चाय जैसा ट्यानिन के स्वरूप का कोई पदार्थ नहीं है, इसलिये पचन संस्थान पर कॉफी का कोई भी बुरा असर नहीं होता । थोड़ी मिकदार में तो काफी पचन में सहायता देती है । इसका मुख्य असर हृदय तथा मस्तिष्क पर होता है । तस्मात् यह मस्तिष्क तथा हृदय को उत्तेजित करके शारीरिक तथा मानसिक थकावट दूर करती है और क्रिया-शक्ति बढ़ाती है । तथापि इसमें पौष्टिक अंश कुछ भी नहीं है यह ध्यान

में रखना जरूर है। इससे जो उत्तेजना मिलती है, वह थके-माँदे घोड़े को कोड़े लगाने जैसी होती है। कोड़ों की मार से घोड़ा अपनी शक्ति से अधिक काम करता है, परंतु इससे उसको बल नहीं आता, बल्कि थोड़ी ही दूर जाकर थक जाता है। इसी प्रकार कॉफी पीने से शरीर में जो तरावट सी मालूम होती है उससे मनुष्य अधिक काम करने लगता है, परन्तु थोड़े ही समय के बाद उत्तेजना का परिणाम शरीर की थकावट में ही होता है। काफी मूत्रल भी है। थोड़ी मिकदार में कॉफी शरीर की थकावट दूर करके आराम देती है परन्तु ज्यादा मिकदार में हृदय की कमजोरी, अनिद्रा, शारीरिक और मानसिक दुर्बलता पैदा कर देती है।

हृद्रोग, धमनी दार्ढ्य (Arterio-sclerosis), वातरक्त, तथा मानसिक दुर्बलता (Neurasthenia) इत्यादि रोगों से पीड़ित लोगों के लिये काफी अपथ्यकर है, इसलिये इसका सेवन नहीं करना चाहिये। काफी में हमेशा चिकरी (Chicory) नामक पदार्थ की मिलावट की जाती है। चिकरी की जड़ सुखाकर, पीसकर काफी में मिला देते हैं।

कोको—थीओब्रोमा कोका (Theobroma Cacao) नामक वृक्ष के बीज से कोको बनाया जाता है, जो कि वेस्ट इंडीज़ में बहुतायत से पैदा होता है। इसका मुख्य घटक थिओब्रोमिन नामक (Theobromine) द्रव्य होकर इसके सिवा मेद, कार्बोहाइड्रेट इत्यादि द्रव्य भी होते हैं। उत्तेजक द्रव्यवर्ग में कोको एक ऐसा पदार्थ है जिसमें पौष्टिक भाग पाया जाता है।

इसकी घटना

कोको बटर (स्नेहद्रव्य) ४२·९ प्र० श० स्याक्यारोज १·२ प्र० श०

थीओब्रोमिन	०.९७	,,	स्टार्च	४.२	,,
अल्ब्यूमिनाइडस	१०.५	,,	सेल्युलोज	१४.४	,,
ग्लूकोज	१.०	,,	जल	५.१	,,
			क्षार	३.७	,,

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि इसमें कोकोबटर नामक स्नेह-द्रव्य बहुत अंश में होता है। लेकिन यह पचने में कठिन होता है तथा बहुत दिन तक रहता नहीं इस कारण से इसकी मात्रा कम की जाती है। इसका मुख्य घटक थीओब्रोमिन नामक पदार्थ है जो प्यूरिन जात का है और यह द्रव्य वातरक्त में हानिकारक होता है इसलिये वातरक्त में कोको का सेवन नहीं करना चाहिये। कोको के सेवन से अन्न पचने में मदद भी नहीं मिलती तथा बाधा भी नहीं होती। यह पेय काफी और चाय का मध्यवर्ती है। चाय और कॉफी की अपेक्षा यह अधिक स्वादु, कम स्तंभक, और अधिक पुष्टिकारक है। इस कारण से कई लोग चाय और काफी की अपेक्षा कोको पसंद करते हैं। कोको वातरक्त, आमवात, हृद्रोग, वृक्करोग इत्यादि रोगों में हानिकारक है।

चाकोलेट (Chocolate) नामक पदार्थ कोको से ही बनाया जाता है जिसमें कोको का स्नेहांश जड़ होने के कारण कुछ कम करके चीनी, स्टार्च और दूसरे खुशबूदार पदार्थ डाले जाते हैं।

मद्यवर्ग

नमांस भक्षणे दोषो न मद्ये।
प्रवृत्ति रेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ मनुस्मृति ॥

आदि काल से किसी न किसी रूप में पृथ्वी के प्रत्येक भाग में

मद्य का सेवन मनुष्य कर रहें हैं। मद्य का सेवन यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। भारतवर्ष में भी इसका उपयोग किया जाता था परंतु कुछ नियम करके उसके सेवन में मर्यादा रखी गयी थी।

भारतवर्ष में जो मद्य तयार होता है वह चावल, महुआ, खजूर, ताड़ इत्यादि से बनाया जाता है। विलायती मद्य के अलकहोल के (C_2H_5OH) मात्रा के अनुसार तीन प्रकार किये गये हैं। प्रथम प्रकार को स्पिरीट (spirit) कहते हैं, इसमें अलकोहोल प्रतिशत ४० होता है। इस श्रेणी के प्रधान मद्य ब्रांडी, रम, व्हिस्की और जिन है। दूसरे प्रकार को वाईन (wine) कहते हैं और इसके हलकी और कड़क ऐसे दो विभाग किये गये हैं। हलके मद्य में अलकहोल १५ प्रतिशत से कम होता है, और इसके प्रधान मद्य बोर्डो, बर्गंडी, श्यांपेन, मोसेले, और हाइन वाईन ये हैं। दूसरा विभाग कड़क वाईन का है, इसमें अलकहोल प्रतिशत १५ से २५ तक होता है, और इस विभाग के प्रधान मद्य पोर्ट, शेरी, मडेरा ये हैं। वाईन द्राक्षा रस से तयार की जाती है। तीसरा वर्ग बीर मद्य का है और यह माल्ट, हाप्स, बार्ली इत्यादि से तयार किया जाता है। इसमें अलकहोल ४ से ५ प्रतिशत होता है।

मद्य के गुणधर्म और उपयोग

लघूष्णतीक्ष्ण सूक्ष्माम्लव्यवाय्या शुगमेव च।
रुक्षं विकासी विशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ चरक ॥
विधिना मात्रयाकाले हितैरन्नैर्यथाबलम्।
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्यस्यादमृतोपमम् ॥माधवनिदान॥

मद्य हलके अवस्था में तथा थोड़ी मात्रा में सेवन करने से आमाशय

में पहुँचकर जठररस को उत्तेजित करके अधिक परिमाण में रस का स्राव करता है, आमाशय की गति बढ़ा देता है, इसलिये मद्य के सेवन से भूक ज्यादा मालूम हुआ करती है और अन्न हजम होने में सहायता होती है। इसलिये मद्य दीपनपाचन है।

रोचनं दीपनं हृद्यम्। चरक।

ज्यादा तादाद में सेवन करने से जाठर-रस का स्राव कम होकर श्लेष्मा का स्राव (Mucus) अधिक होने लगता है, और लगातार सेवन करने से आमाशय के पचन शक्ति का क्षय होकर अग्निमांद्य पैदा होता है। आमाशय से मद्य बहुत शीघ्र जज्ब होकर प्रथम यकृत में जाता है और वहाँ यकृत के सेलों का शोथ करता है। लगातार सेवन करने से यह विकृति निरंतन होकर यकृदाल्यूदर (Cirrhosis) और मेदापक्रांति (Fatty degeneration) हुआ करती है। आखिर में यकृदाल्यूदर से जलोदर पैदा होकर मृत्यु तक हो जाती है।

रक्त में मिलकर मद्य आक्सिजन का हीमो ग्लोबिन के साथ ऐसा दृढ़ संबंध बना देता है कि हीमोग्लोबिन आक्सिजन से विभक्त नहीं हो सकता तथा नया आक्सिजन को भीतर नहीं ले सकता। इसका परिणाम यह होता है कि शरीर के भीतर फ्याट और कार्बोहाइड्रेट का ज्वलन अच्छी तरह से न हाकर शरीर में मेदो वृद्धि होती है।

मद्य हृदय को उत्तेजित करता है परंतु तरावट निकल जाने के बाद पहिले से ही अधिक थकावट मालूम होती है।

मद्य का लगातार उपयोग वृक्क रोग (Chronic Nephritis) पैदा करता है।

मद्य भोज्य द्रव्य के रूप में प्रोटीन का ह्रास कुछ कम करता है परंतु मेद और कार्बोहाइड्रेट से इसका गुण कुछ कम है। यह कार्बोहाइड्रेट के जात का खाद्य पदार्थ है जो शरीर में ताप और शक्ति देता है। इस कारण से मद्य के सेवन से शरीर को कुछ शक्ति मिलती है जरूर परंतु यदि अन्न के साथ इसका उपयोग किया जाय तो मद्य अन्न हो सकता है।

स्निग्धै स्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ।
भवेदायु प्रकर्षाय बलायौपचयाय च ॥ सुश्रुत ॥

परंतु मद्य का सब से महत्व का परिणाम मस्तिष्क पर होता है। मद्य के सेवन से मस्तिष्क में उत्तेजना आती है, आनंद होता है, शोक, दुख इत्यादिक की विस्मृति हो जाती है और सर्व प्रकार से शरीर को आराम मालूम होता है।

बहुदुःखकृतस्यास्य शोकेनोपहतस्य च ।
विश्रामो जीवलोकस्य मद्यं युक्त्या निषेवितम् ॥चरक॥

मद्य के सेवन में यद्यपि बहुत फायदे होते हैं तथापि यदि उससे होनेवाले विकार का विचार किया जाय तो मद्य का सेवन न करना अधिक बेहतर है, क्योंकि यद्यपि मात्रानुरूप पीने से मद्य में बहुत गुण होते हैं तथापि मद्य एक ऐसा पदार्थ है जिसके सेवन की आदत एक दफे पड़ गयी तो उससे छुटकारा पाना मुश्किल हो जाता है और उसकी मात्रा दिन ब दिन बढ़ती रहती है। इसके लगातार सेवन करने से अजीर्ण, अग्निमांद्यादि रोग होते हैं, हृदय में मेदापक्रांति, कमजोरी, हृत्स्पंद, धमनियों में धमनीदार्ढ्य, यकृत् में मेदापक्रांति यकृदाल्यूदर और उससे

जलोदर, वृक्क में जीर्ण वृक्कशोथ (Chronic Nephritis), नाडी-शोथ (Neuritis), शरीर में मेदो वृद्धि, कहाँ तक बतलाएँ, शरीर का कोई भी धातु, अवयव, इंद्रिय शेष नहीं रहता जिसके ऊपर मद्य के विष का (Narcotic poison) परिणाम नहीं हुवा हो। इसका परिणाम यह होता है कि मद्य पीनेवालों की प्राण-शक्ति (Vitality) दुर्बल होकर मद्यपी रोगों का शिकार बनकर मृत्यु का मेहमान बनजाता है।

धर्माधर्मं सुखं दुःखमर्थानर्थं हिताहितम्।
यदासक्तोन जानाति कथं तच्छीलयेद्बुधः॥
मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रितः।
सोन्माद मद मूर्च्छायाः सापस्मारापतानकाः।
यत्रैकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधुयत्॥
अयुक्तियुक्तमन्नंहि व्याधये मरणाय वा।
मद्यं त्रिवर्गधीधैर्यलज्जादेरपि नाशनम्॥
निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत्।
विकारैस्पृश्यते जातु न स शारीरमानसैः॥वाग्भट॥

तमाखू

तमाखू, अफीम, भांग, गांजा इत्यादि पदार्थ मद्य के तौर पर उत्तेजना के लिये व्यवहृत होते हैं। यद्यपि सचमुच ये अनुपानवर्ग में नहीं आ सकते तथापि इनका असर शरीर पर मद्य जैसा होता है, इसलिये इनके गुण-दोषों का थोड़ा विचार करना जरूरी है।

इस संसार में ऐसी कोई मनुष्य जाति नहीं मिल सकती जो कि मादक-द्रव्यों से सर्वथा अलिप्त हो। सबके पीछे एक-न-एक नशा लगा

होता है। तमाखू एक ऐसी चीज है जो कि सर्वत्र व्यवहृत होती देखी जाती है।

तमाखू का आदि स्थान अमेरिका है, जहाँ से सर वाल्टररेले इसे यूरोप ले गये। वहाँ से टर्की, रूस होती हुई मुसलमानों के कारण यह भारतवर्ष आ पहुँची। आजकल इसका सेवन सभ्यता का चिह्न हो गया है। तमाखू एक पौधे का (Nicotiana tobacum) पत्ता है। इसका सेवन अनेक तरह से किया जाता है। इतनी सेवन की विविधता शायद दूसरी नशीली चीजों में नहीं होती। तमाखू का व्यवहार कितने प्रकार से होता है यह नीचे दिया है।

१. गुडाखू।
२. चुरुट, सिगरेट, बिड़ी।
३. दोखता।
४. गोली।
५. जरदा।
६. सुरती।
७. नस्य।
८. पकी तमाखू।
९. सूखा तमाखू।

तमाखू में नीकोटीन (Nicotine) नामक एक भयानक विष होता है। यह विष तमाखू सेवन करनेवालों के शरीर में हानि उत्पन्न करने का प्रधान घटक है।

इसकी मारक-शक्ति इतनी है कि आठ बुंद में घोड़ा और २ बुंद में कुत्ता शीघ्र मर जायगा। चौबीस घंटे के अंदर एक मनुष्य जितनी तमाखू सेवन करता है उतनी यदि एक मर्तबा सेवन करे तो निस्संदेह उसकी मृत्यु उसी दम हो जायगी। तमाखू सेवन करने से शरीर में कुछ उत्तेजना मालूम होती है, परन्तु थोड़ी ही देर में उससे अधिक सुस्ती आ घेरती

है। प्रत्येक मादक-द्रव्य का यह एक सामान्य नियम है कि उत्तेजना के पीछे उसकी प्रतिक्रिया अवसाद से होती है।

चुरुट, सिगरेट इत्यादि पीने से तमाखू का धुँआँ मुख-मार्ग से श्वास-नलिका द्वारा फेफड़ों में जाकर श्वास यन्त्रों के झिल्ली का चिरकारी शोथ पैदा कर देता है। इससे खाँसी सूखी या गिली, कंण्ठस्वर की विकृति और श्वास इत्यादि रोगों का प्रादुर्भाव होता है। तमाखू पीनेवाले लोगों के मुख से सदा दुर्गन्ध आती रहती है।

जो तमाखू खाते हैं उनका मुख सदा गलीज रहता है, दाँत की सफेदी नष्ट हो जाती है। इसके रस से आमाशय का प्रदाह होकर अग्निमांद्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। खून में मिलने के बाद इसका बुरा असर शरीर के प्रत्येक इंद्रिय पर होता है। हृदय के काम में विलक्षणता, हृत्स्पन्द, हृग्रह, (Heart cramp), मस्तिष्क-दुर्बलता, काम में अनिच्छा, अवसाद, स्मृतिनाश, शिर-शूल, अनिद्रा इत्यादि उपसर्ग धीरे-धीरे शरीर पर अपना अधिकार जमा लेते हैं। यदि तमाखू का सेवन अधिक किया जाय तो आँखों की नाड़ी (Optic nerve) में खराबी होकर एक प्रकार की अंधता (Tobacco amblyopia) उत्पन्न होती है।

तमाखू के सेवन में हुक्का सेवन कम हानिकारक है, क्योंकि तमाखू का धुँआँ पानी में से होकर शरीर में प्रवेश करता है। इससे तमाखू की अपकारिता कुछ घट जाती है, परंतु विष एकदम नष्ट नहीं हो जाता। सबसे कम हानिकारक नस्य है।

तमाखू के बाद अफीम, भाँग, गाँजा इत्यादि मादक-द्रव्यों का भी

बहुत व्यवहार किया जाता है, तथापि सभ्य लोग इनका विशेष सेवन नहीं करते। इनका सेवन करनेवालों का मिजाज रूखा, दिमाग खराब और आँखें लाल रहती हैं। अफीम खानेवाले जवानी में बूढ़े हो जाते हैं, उनका शरीर एकदम निकम्मा हो जाता है। संसार में क्या हो रहा है, उसे जानने की उनको विशेष परवाह नहीं रहती। हरदम वे सोते रहते हैं और आँखें मीचकर न मालूम किस अपार आनन्द का अनुभव करते रहते हैं।

अफीम एक ऐसी खराब चीज है कि एक बार खाने का आरंभ कर दिया तो सिवा अफीम के काम नहीं हो सकता। अफीम खानेवाला रोगी हो जाय तो उसके ऊपर दवाइयों का असर नहीं होता और उसके रोग दुःसाध्य हो जाते हैं।

मादक पदार्थों के बारे में सामान्य नियम।

१—सब मादक पदार्थ शुरू में शरीर को आराम देनेवाले जरूर मालूम होते हैं और उनके सेवन का यही विशेष कारण है।

२—लगातार सेवन करने से उनकी आराम देने की शक्ति कम हो जाती है, और पहिले जैसा आराम मिलने के लिये उनकी मात्रा धीरे-धीरे हमेशा वर्धित करनी पड़ती है।

३—उनका सेवन करना एक बार शुरू करने पर, फिर उनको छोड़ देना मुश्किल होता है।

४—इनके सेवन से शरीर के अवयव और इंद्रियाँ बिना जरूरत उत्तेजित होती हैं, और यह उत्तेजनाभार विशेष करके हृदय, मस्तिष्क इत्यादि इंद्रियों पर पड़ता है।

५—उत्तेजना खतम होने के बाद इनकी कुदरती ताकत सदा के लिये मारी जाती है और वे जल्दी निकम्मे हो जाते हैं।

६—हृदय, मस्तिष्क, फेफड़े इत्यादि शरीर के खास-खास अवयव निकम्मे हो जाने के बाद उसका परिणाम अकाल मृत्यु है। अकाल-मृत्यु के कारणों में मादक पदार्थों का सेवन एक प्रधान कारण है।

त्रयोदश अध्याय

आहारमात्रा

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयौजसे।
अतिमात्रं पुनः सर्वानाशुदोषान् प्रकोपयेत् ॥ वाग्भट ॥

स्वास्थ्यरक्षा करने के लिये आहार की आवश्यकता तथा आहार के भिन्न-भिन्न घटकों का विचार अब तक खूब स्पष्ट रूप से हो चुका है, और यह भी निर्णय हुआ है कि बिना आहार के स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। आहार के प्रत्येक घटकों का कार्य शरीर में विशिष्ट हुआ करता है, इस कारण से प्रत्येक घटक की उचित और पर्याप्त मात्रा का सेवन स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक है, केवल अनाप शनाप खाद्य-द्रव्यों के सेवन से स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा। यदि उचित मात्रा से कम आहार का सेवन किया जाय तो भी शरीर दुर्बल, क्षीण और कृश होता है, और यदि अधिक मात्रा में सेवन किया जाय तो पचन-संस्थान के रोग प्रथम प्रादुर्भूत होकर कभी कभी मृत्यु भी होती है।

अनात्मवंतः पशुवद्भुंजते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य तेमूलमजीर्णं प्राप्नुवंति हि ॥ सुश्रुत ॥

आहार की मात्रा जानने की दो शास्त्रीय पद्धतियाँ हैं । प्रथम पद्धति को अनुभविक (Empherical method) पद्धति कहते हैं और दूसरी को प्रायोगिक (Physiological method) पद्धति कहते हैं ।

प्रथम पद्धति—इस संसार में मनुष्यों की अनन्त जातियाँ हैं और प्रत्येक जाति का खाद्य और सङ्गठन भिन्न भिन्न रहता है । इसलिये कौन कौन-सी जातियाँ किस प्रकार का खाद्य किस परिणाम में खाती हैं और उनका शारीरिक संगठन, बल तथा कार्य-क्षमता कैसी होती है, इस बात का निर्णय करके फिर इस विधि में आहार-मात्रा की राशि निश्चित की जाती है । लेकिन इस आधार पर आहार-मात्रा का निर्णय करने में एक गलती होती है कि केवल आहार पर शरीर का स्वास्थ्य, बल, कार्य-क्षमता निर्भर नहीं होती । देश-भेद, जाति-भेद, व्यवसाय-भेद इत्यादि पर आहार मात्रा अधिक निर्भर हुआ करती है ।

द्वितीय पद्धति—मनुष्यों के शरीर का क्षय निरंतर हो रहा है और इस क्षय-पूर्ति के लिये ही विशेष करके भोजन का सेवन किया जाता है । यदि इस क्षय का परिमाण निश्चित कर सके तो खाद्य का भी परिमाण निश्चित हो सकता है । देह क्षय-जनित पदार्थ मल-मूत्र स्वेद इत्यादि द्वारा शरीर के बाहर निकल जाते हैं । नायट्रोजन और कार्बन देह-क्षय-जनित पदार्थों के प्रधान उपादान है । देह क्षय के साथ जो नाट्रोजन शरीर में से नष्ट हो जाता है वह माँस जातीय या प्रोटीन जातीय आहार से पूरा होता है । यदि नाइट्रोजन का क्षय ज्ञात हो तो आहार में प्रोटीन

की शक्ति कितनी होना चाहिये यह मालूम हो जायगा। जिस प्रकार नाइट्रोजन से माँस जातीय पदार्थों की राशि निश्चित होती है उसी प्रकार शरीर से निकले हुए कार्बन, जलीय-बाष्प और उष्णता को जानकर शालि तथा स्नेह जातीय खाद्य-द्रव्यों की राशि निश्चित हो सकती है।

सामान्यतः १५० पौंड भार का मनुष्य चौबीस घंटे में २० ग्राम नाइट्रोजन शरीर के बाहर मल-स्वरूप में फेंक देता है। प्रोटीन-द्रव्यों में १५ फी० सदी नाइट्रोजन रहता है। (पृष्ठ १०५), इसी हिसाब से २० ग्राम नाइट्रोजन से शरीर के १२० ग्राम प्रोटीन द्रव्य का नाश दर्शित होता है। इसलिये इसकी पूर्ति करने के लिये प्रतिदिन १२० ग्राम प्रोटीन द्रव्य का सेवन जरूर करना चाहिये। प्रथम पद्धति के अनुसार खोज करके यह निर्णित हुआ है कि मजबूत हृष्ट-पुष्ट लोग प्रतिदिन ९० से १०० ग्राम प्रोटीन का सेवन करते हैं। तस्मात दोनों पद्धति से यह स्पष्ट है कि प्रतिदिन परिश्रम करनेवालों के लिये १०० ग्राम प्रोटीन द्रव्य का सेवन जरूर करना चाहिये।

प्रोटीन द्रव्य का निर्णय करने के बाद शालि-जातीय तथा स्नेह-जातीय द्रव्यों का निर्णय करना चाहिये। ये दो पदार्थ शरीर को कार्बन तथा शक्ति और उष्णता देनेवाले हैं। सामान्यतः प्रतिदिन मनुष्य ३०० ग्राम कार्बन शरीर के बाहर निकाला करता है। इसलिये शरीर को प्रति-दिन ३०० ग्राम कार्बन मिलना चाहिये। मांस जातीय द्रव्यों की पूर्ति करने के लिये जो १०० ग्राम प्रोटीन शरीर में जाता है उससे ५४ ग्राम कार्बन मिलना चाहिये, क्योंकि प्रोटीन में फी सदी ५४ कार्बन होता है (पृष्ठ १०५)। परंतु उसमें से केवल $\frac{1}{3}$ यानि ३६ ग्राम ही कार्बन कार्बन

के काम के लिये मिल सकता है। बाकी जो २६४ ग्राम कार्बन रहा उसको स्नेह या कार्बोहाड्रेट के स्वरूप में लेना चाहिये। शरीर के सेलों के लिये कार्बन कार्बोहाड्रेट या मेद से मिलता है यह बात महत्व की नहीं है, शक्ति तथा उष्णता उत्पन्न करने के लिये कार्बन मिलना चाहिये यह बड़ी महत्व की बात है। तथापि जिसके सहायता से यह कार्बन की राशि खाद्य-द्रव्यों में से शोषित होकर शरीर में प्रवेश करती है, वह पचन संस्थान इस बात पर विशेष दत्तचित्त रहता है, क्योंकि दोनों की पचनीयता एक-सी नहीं होती। यदि सारी ही कार्बन की राशि मेद के स्वरूप में लिया जाय तो इतने मेद का पचन आँतों में न होकर वमन, अजीर्ण, अतिसार आध्मानादि विकार होने की सम्भावना होगी। यदि कार्बोहाड्रेट के स्वरूप में लिया जाय तो बहुत कार्बोहाड्रेट का सेवन करना पड़ेगा जिससे आमाशय और आंतों पर बड़ा भारी बोझ होकर अम्लपित्तादि रोग होने की सम्भावना होगी। इसका कारण यह है कि कार्बोहाड्रेट में सिल्युलोज जैसा दुष्पाच्य पदार्थ अधिक होता है और एक ग्राम मेद से जो शक्ति उत्पन्न होती है उसके लिये करीब करीब २$\frac{१}{४}$ कार्बोहाड्रेट लेना पड़ता है। इन सब बातों का पूर्ण विचार करके यह कहना पड़ता है कि उसमें से करीब ५० ग्राम मेद स्वरूप में और २०० ग्राम कार्बोहाड्रेट के स्वरूप में लेना जरूर है, और इसलिये करीब ७५ ग्राम मेद और ४५० ग्राम कार्बोहाड्रेट लेना जरूर है।

खाद्यद्रव्यों की शक्तिदायकता

खाद्य-द्रव्यों से शरीर में जो शक्ति उत्पन्न होती है वह उष्णता के स्वरूप में बतायी जाती है, क्योंकि शक्ति उष्णता का ही एक रूपांतर है

(पृष्ठ १०२)। यह उष्णता का मापन क्यालोरी (Calorie) से किया जाता है। एक पौण्ड या ४० तोला पानी की उष्णता ४ फ्या० बढ़ाने के लिये जितनीं उष्णता आवश्यक होती है उतनी उष्णता एक क्यालोरी से दर्शित होती है।

प्रोटीन, फ्याट और कार्बोहाइड्रेट से शरीर को भिन्न भिन्न उष्णता मिला करती है।

द्रव्य	लभ्यशक्ति		उपलब्ध शक्ति	
प्रोटीन	५ ˙ ७४७	क्यालरी	४ ˙ ४२४	क्यालरी
मेद	९ ˙ ४२३	,,	९ ˙ ४२३	,,
द्राक्षाशर्करा	३ ˙ ६८१	,,	३ ˙ ३८२	,,
इक्षुशर्करा	४ ˙ ००१	,,	४ ˙ ००१	,,
दुग्धशर्करा	३ ˙ ८७७	,,	३ ˙ ८७७	,,
स्टार्च	४ ˙ ११६	,,	४ ˙ ११६	,,

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि मेद और कार्बोहाइड्रेट से जितनी शक्ति मिलना मुमकिन है उतनी पूर्ण रूप से शरीर को मिल सकती है, परंतु प्रोटीन से पूर्ण नहीं मिल सकती, उसके कार्बन का कुछ भाग युरिआ ($CO(NH_2)_2$) के स्वरूप में शरीर के बाहर निकल जाता है।

प्रोटीन द्रव्य से नाट्रोजन की राशी निकलवाने के लिये प्रोटीन के कुल भार को ० ˙ १५४ से गुणा करो, जो गुणनफल आ जायगा वह नाट्रोजन की राशि दर्शित करेगा। मेद द्रव्य से कार्बन की राशि निकल-लवाने के लिये मेद द्रव्य के कुल भार को ० ˙ ७६५ से गुणा करो और कार्बोहाइड्रेट के राशि से कार्बन निकलवाने के लिये उसके राशि को

० ´ ४४४ से गुणा करो तो जो गुणनफल आ जायगा वह कार्बन की राशि मेद और कार्बोहाइ्ट में कितनी है दर्शित करेगा।

बिना परिश्रम रहनेवालों को खाद्यद्रव्यों से २००० क्यालोरी शक्ति, मध्यम परिश्रम करनेवालों को ३००० और कड़े परिश्रम करनेवालों को ४००० क्यालोरी शक्ति मिलना चाहिये, और उसमें प्रोटीन से १६ ७ फी सदी मेद से १६ ´ ३ और कार्बोहाइ्ट से ६६ ´ ९ के करीब मिलना चाहिये।

इन तीनों प्रकार के पद्धति से श्रमभेद के अनुसार मनुष्य को भिन्न भिन्न उपादानों की कितनी ज़रूरत है यह नीचे तालिका में दिया है।

२४ घंटे में	बिना परिश्रम	साधारण परिश्रम	विशेष परिश्रम
प्रोटीन	५ तोला	१० तोला	१६ तोला
मेद	१। ,,	५ ,,	१० ,,
कार्बोहाइ्ट	३० ,,	४० ,,	४२ ,,

ये सब निर्जल खाद्य के अंक है। सामान्यतः खाद्यद्रव्यों में बराबर पानी तत्व होता है इसलिये सद्रवखाद्यद्रव्यों की राशि निश्चित करने के लिये उपर्युक्त अंकों को दुगुना करना चाहिये। आसानी के लिये सामान्य नियम यह हो सकता है कि मनुष्य के प्रति ५ सेर भार के पीछे बिना परिश्रम वालों को १ औंस और परिश्रमवाले के ३॥ सेर भार के पीछे १ औंस खाद्यद्रव्य मिलना चाहिये। यह पीछे स्पष्ट रूप से बतलाया गया है कि (पृष्ठ १०७) प्रोटीनद्रव्य का काम दूसरे उपादान से हरगिज़ नहीं हो सकता इसलिये प्रोटीन के परिमाण पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। विशेष मानसिक श्रम करनेवालों के भोजन में प्रोटीन

द्रव्य की कमी हानिकारक है, क्योंकि शारीरिक श्रम की अपेक्षा मानसिक श्रम में प्रोटीन की क्षति अधिक हुआ करती हैं। शारीरिक श्रम करनेवालों को कार्बोहाइड्रेट और मेद अधिक मिलना चाहिये क्योंकि बल और उष्णता उत्पन्न करनेवाले येही प्रधान उपादान है।

इस प्रकार शास्त्रज्ञों ने परिश्रम, प्रयोग और विचार करके बहुत नियम और तालिकाएँ वनायी है, जोकि मनुष्यजात को आहार के बारे में मार्गदर्शक हो सकती है। इनका विशेष उपयोग जेलखाना, अनाथालय पाठशाला इत्यादि संस्थाओं में हो सकता है, तथापि ऐसे कृत्रिम नियमों से तथा तालिकाओं से व्यक्ति मात्र का आहार का प्रश्न निर्णित नहीं हो सकता। व्यक्तिमात्र के लिये आहार के मात्रा का नियम यह है।

मात्राया न व्यवस्थाऽस्ति देशं कालं वयो बलम्।
व्यवसायं तथा लिंगं वीक्ष्य मात्रां प्रकल्पयेत्॥

१ देशभेद—शीत प्रधान देशों में शरीर से गर्मी अधिक तादाद में नष्ट हुआ करती है इस कारण से उष्णतोत्पादक द्रव्यों की आवश्यकता वहाँ अधिक हुआ करती है। ग्रीनलेंड जैसे अत्यन्त ठण्ड देशों में मछली का तेल लोग अधिक खाया करते हैं।

२ कालभेद—उपरोक्त कारण से गरमी के मौसम की अपेक्षा जाड़े के मौसमें अधिक स्निग्ध पदार्थों की ज़रूरत मालूम होती है और स्वास्थ्य के लिये अधिक स्निग्ध पदार्थ का सेवन भी ज़रूर है।

शीते शीतानिलस्पर्शसंरुद्धो बलिनां बली।
पक्ताभवति हेमंते मात्राद्रव्यगुरुक्षमः।

स यदा नेंधनं युक्तं लभते देहजं तदा ॥ चरक ॥

रसमुच्छोषयत्याशु तस्मात् स्निग्धं सदा हितम् ॥ सुश्रुत ॥

३ वयभेद के अनुसार आहार के मात्रा में तथा उसके उपादान के मात्रा में ज़रूर फ़रक करना चाहिये ।

वयस्तु त्रिविधं—बाल्यं, मध्यं, वृद्धमिति । तत्र, आ विंशतेर्वृद्धी: आत्रिंशतो यौवनं, आचत्वारिंशत: सर्वधात्विंद्रियबलवीर्यसंपूर्णता, अतरुर्ध्वमिषत्परिहाणि: ॥ सुश्रुत ॥

क्योंकि वय के अनुसार वृद्धि काल, स्थितिकाल, और हानिकाल ऐसे तीन काल हो जाते हैं । बाल्यावस्था में शरीर के भीतरी क्षति की पूर्ति के सिवा तमाम धातुओं की वृद्धि होती रहती है, दूसरे, भार के दृष्टि से उनके शरीर का पृष्ठभाग अधिक होने के कारण उष्णता का नाश भी अधिक होता रहता है, और तीसरे, सदासर्वदा उद्योगशील होने के कारण परिश्रम भी बहुत होते रहते हैं । इसलिये बाल्यावस्था में प्रोटीन तथा मेद जातीय द्रव्यों की विशेष आवश्यकता है । जब शरीर की वृद्धि पूरी हो जाती है तो प्रोटीन की मात्रा कुछ कम करना चाहिये और पचास बरस के बाद तो जब हानि शुरू होती है तो प्रोटीन खाद्य बहुत ही कम लेना चाहिये ।

४ लिंगभेद—सामान्यतः स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कम आहार लगता है, क्योंकि उनका काम मामूली और हलका रहता है । तथापि श्रम अधिक करना पड़े तो स्त्रियाँ भी पुरुषों के बराबर या पुरुषों से अधिक भोजन कर सकती है ।

७ व्यवसायभेद—संसार में व्यवसाय दो प्रकार के हैं, मानसिक

और शारीरिक। उसमें मानसिक श्रम करनेवालों की अपेक्षा शारीरिक श्रम करनेवालों के लिये उष्णोतोत्पादक खाद्य द्रव्यों की विशेष परिमाण में आवश्यकता है। मेहनत-मज़दूरी करनेवाले लोग इस कारण से चावल आलू इत्यादि शालीयद्रव्य भूयिष्ट पदार्थों पर अपना निर्वाह अच्छी तरह से कर सकते हैं। मानसिक श्रम करनेवाला मनुष्य हमेशा शारीरिक श्रम करनेवाले की अपेक्षा कम मज़बूत तथा उसकी पाकस्थली कमज़ोर रहती है और मानसिक श्रम से प्रोटीन-द्रव्य का नाश अधिक होता रहता है, इसलिये उसको हलका तथा प्रोटीन द्रव्य भूयिष्ट आहार चाहिये।

६ बलभेद—शरीर की संगठन तथा वजन पर आहार की मात्रा निर्भर रहती है। वज़नदार मनुष्य को हलके मनुष्य की अपेक्षा, तथा लंबे पतले मनुष्य को छोटे मनुष्य की अपेक्षा अधिक खाद्य लगता है।

उपरोक्त आहार मात्रा की तालिका तथा नियमों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि अपने अपने स्वास्थ्य तथा रुचि के अनुसार भोजन की मात्रा नियत करे। आहार के संबंध में कोई भी एक नियम सबके गले नहीं बाँधा जा सकता है।

मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं यद्बलोपचयौजसे।
सुखं जीर्यतितद्ब्रह्म धातुसाम्यं करोति च ॥

चतुर्दश अध्याय

भोजन संबंधी संकीर्ण विचार

प्रशस्तदिग्देशकृतं शुचिभाडं महच्छुचि ।
सजालकं गवाचाढ्यमात्मवर्ग निषेवितम् ॥
विकचसृष्ट संसृष्टं सवितानं कृतार्चनम् ।
परीचित स्त्रीपुरुषं भवेच्चापि महानसम् ॥सुश्रुत॥

महानस—महानस या रसोईघर जिसमें भोजन तयार किया जाता है स्वच्छ, प्रशस्त, हवादार, और सुप्रकाशित होकर ऐसे स्थान में होना आवश्यक है कि उसके आस-पास, सामने, बगल में सण्डास . पायखाना, पेशाबखाना, कूड़ा कर्कट फेंकने की जगह न हो, मुख्य गृह के साथ उसका ऐसा सम्बन्ध होना जरूर है कि उसका धुँआँ तमाम घर में न फैल सके। उसमें हवा और प्रकाश आने के लिये काफी खिड़कियाँ तथा धुँआँ बाहर जाने के लिये छत के समीप रोशनदान रखना चाहिये। उसकी मोरी तथा नालि ऐसी होना चाहिये कि पानी तत्काल बह जाय और उसके नजदीक न रुक सके। उसकी फर्श पत्थर या सीमेंट जैसे अप्रवेश्य स्तर की और सुथरी होना चाहिये और उसको हमेशः भोजन के अनन्तर पानी से साफ धुलवाना चाहिये। उसमें लकड़ी कोयला इत्यादि अनापसनाप पदार्थ नहीं रखना चाहिये, तथा ऐसे भी कोई गंदे पदार्थ नहीं रखना चाहिये जिनसे मक्खियाँ, कीड़े पैदा हो सकते हैं। ये कीड़े और मक्खियाँ तरह तरह के रोग के कारण होते हैं। विषूचिका; आंत्रिक ज्वर इत्यादि रोगों के जीवाणुओं के ढोकर लाती है और खाने के चीजों

पर बैठकर उनमें इन जीवाणुओं को छोड़कर देती है। जिन्हें खाकर हम लोग उन रोगों से पीड़ित हो जाते हैं। उसमें धुँएँ की कज्जली तथा जाले इत्यादि न होने देना चाहिए, क्योंकि हवा के झपाटे के साथ इनके भोज्य पदार्थों में पड़ने की सम्भावना रहती है।

रसोई घर में जो सामान रखना आवश्यक है वह आलमारी पर क्रम-बद्ध तथा व्यवस्थित रखना चाहिए। जो पात्र रोज के काम में आते हैं उनको स्वच्छ तथा चमकीले रखना चाहिए। यदि तांबे या पीतल के पात्र हों तो उनपर कलई करके रखना उचित है, क्योंकि कलई न करने से उनका विष भोज्य पदार्थों में मिलने का भय रहता है।

विशेष करके खट्टे पदार्थों को पीतल या तांबे के बर्तनों में नहीं रखना चाहिए। उनके लिए मिट्टी, पत्थर, कांँच अथवा चिनी मिट्टी के पात्र उचित है। भोजन के सब पदार्थ चाहे शुष्क चाहे तरल हमेश बर्तन में ढककर रखना चाहिए, ताकि मक्खियाँ उन पर न बैठ सके। भोज्य-पदार्थों को खराब हाथ से नहीं छूना चाहिए और सब पदार्थों को ऐसे स्थान में रखना चाहिए कि उनमें धुलि, मिट्टी इत्यादि न गिरने पावे।

रसोई बनाने का जल हमेश पीने के जल जैसा शुद्ध होकर उसको भी हमेश ढककर रखना जरूर है।

रसोइया और नौकर

शुचयो दक्षिणा दक्षा विनीताः प्रियदर्शिनः।
संविभक्ताः सुमनसो नीचकेशनखाः स्थिराः॥
स्नाता दृढं संयमिनः कृतोष्णीषाः सुसंयताः।
तस्य चाज्ञाविधेयाः स्युर्विविधाः परिकर्मिणः॥ सुश्रुत॥

रसोइया—रसोई बनाना एक महत्वपूर्ण काम है, इसलिए जहाँ तक हो सके आपने माता, पत्नी, बहिन इत्यादि प्रेमी मनुष्यों से ही रसोई बनवाना चाहिए। आपके स्वास्थ्य का ध्यान जितना अपने माता पत्नी इत्यादि को रह सकता है उतना नौकरों को रहना असम्भव है। इस कारण से रसोई बनाने का काम यदि नौकरों के स्थान में गृह-देवियाँ करें तो अधिक लाभदायक है। यदि किसी कारण से यह होना असम्भव हो तो रसोई की अच्छी तरह से देखभाल करके उसकी नियुक्ति करना चाहिए। रसोई क्रोधी द्वेषी असन्तोषी न होकर ऐसा सुभाव का होना चाहिए की उसे देखकर चित्त प्रसन्न हो। रसोई की शारीरिक शुद्धि भी आवश्यक है। प्रतिदिन रसोई बनवाने के पहिले स्नान करके स्वच्छ वस्त्र परिधान कर रसोई बनवाना चाहिए। ज्यादातर ऐसा देखा जाता है कि रसोईदार स्वच्छ कपड़े के बजाय रसोई बनाने के समय खास तरह का गंदा कपड़ा रखा करते हैं। यह अत्यन्त स्वास्थ्य हानिकर पद्धति है। रसोईदार के नाखून इत्यादि भी हमेश काट करके साफ होना चाहिए।

भोजन के तथा पकाने के पात्र हमेशा स्वच्छ रखना चाहिए। रास्ते के खराब मिट्टी से भोजन के पात्र सफा करने की जो गंदी आदत लोगों में प्रचलित है वह अत्यन्त खराब है, ऐसे खराब मिट्टी से पात्र साफ करने से न करना ही ठीक, क्योंकि इससे अनेक तरह के संक्रामक रोग होने की सम्भावना होती है। इसलिए ऐसे मिट्टी से हरगिज पात्र साफ न करना चाहिए। दूसरे तरह से पात्र साफ करके फिर उबालते पानी से आखिर में पात्रों को निर्मल करना जरूरी है।

भोजन करने का कमरा जहाँ तक हो सके रसोई घर से अलग होना

चाहिये। भोजन करने का स्थान शांत, स्वच्छ होकर उसमें हवा और प्रकाश का प्रबन्ध ठीक होना चाहिये। वहाँ सामान बहुत ही कम होना चाहिये। प्रतिदिन भोजन होने के बाद साफ धुलवाना चाहिये। उसके आस-पास ऐसा कोई स्थान न होना चाहिए जहाँ से दुर्गंध आ सके।

भोजन करने के पात्र सोना और चाँदी के सबसे उत्तम होते हैं, परन्तु सर्व-साधारण के लिए यह होना असंभव है इसलिए कांसे के पात्र का उपयोग करना चाहिए। पीतल या तांबे के पात्र का उपयोग करना हो तो कलई करके करना चाहिए। पानी रखने के लिए तांबे के पात्र सबसे उत्तम होते हैं (पृष्ठ ७८), तथापि उनको प्रतिदिन साफ रखना चाहिए।

जलपात्रं तु ताम्रस्य तद्भावे मृदोहितम्।

कांच, बिलोर, पत्थर इत्यादि के पात्र चटनी, अचार आदि खट्टे पदार्थों के लिए उत्तम होते हैं।

रंधन क्रिया

अन्य जीवधारियों की भांति मनुष्य अपना खाद्य अपक्वावस्था में नहीं खाता है। उसका कारण यह है कि बिना पकाए मनुष्य अपना खाद्य हजम नहीं कर सकता। दूसरा कारण यह है कि पकाने से उसकी खुशबू बढ़ती है तथा चबाने में आसानी मालूम होती है। पकाने से खाद्य-द्रव्यों में रहनेवाले संक्रामक रोगों के जीवाणु तथा परोपजीवी जंतु नष्ट हो जाते हैं। वानस्पतिक द्रव्य, जिसमें स्टार्च बहुत होता है, पकाने से सुपाच्य हो जाता है क्योंकि स्टार्च एक प्रकार के खोल में बंद रहता है जिसके उपर हमारे पाचक-रस का कुछ प्रभाव नहीं चलता। पकाने से

यह खोल फट कर स्टार्च बाहर आती है और पाचक-रसों के साथ भलीभाँति मिल सकती है जिससे उसका पचन आसान हो जाता है। पकाने में यद्यपि इतने फायदे मालूम होते हैं तथापि सामान्यतः खाद्य-द्रव्यों की बलोत्पादक और पोषक-शक्ति कुछ कम हो जाती है और पकाने में यदि होशियारी न रखी जाय तो उपर्युक्त फायदे होने के बजाय उसकी पोषक-शक्ति और भी कम हो जायगी।

हर प्रकार के शाकों के पकाने में एक बड़ी गलत लोग यह करते हैं कि उनको बहुत से पानी में गालकर पानी फेंक देते हैं। शाकों में वानस्पतिक क्षार होते हैं जिनका काम खनिज क्षारों से नहीं हो सकता, और इन्ही वानस्पतिक क्षारों के लिये साग सब्ज़ियों का सेवन अत्यंत आवश्यक है। पानी में उबालकर ये क्षार उसमें विद्रुत हो जाते हैं और पानी फेंक देने से हम इन क्षारों से वंचित हो जाते हैं। अतएव साग-सब्जियों को पकाते समय इस बात पर जरूर ध्यान देना चाहिए कि इनका क्षारांश नष्ट न हो जाय।

इनको पकाने की एक रीति यह है कि एक दो खानेवाला दोहरा बर्तन लेकर उसके बाहर के खाने में पानी भरना और भीतर के खाने में साग रखकर पानी के भाप से उसको पकाना। आजकल कूकर का (Cooker) जो प्रचार है उसमें इस तत्त्व का ही उपयोग किया गया है। यदि साग बहुत ही शुष्क हो तो उसमें थोड़ा पानी डाल सकते हैं तथापि जहां तक हो सके अपने भीतर के रस से हा साग पकाना चाहिये। दूसरी रीति यह है कि उसमें जितनी जरूरत हो उतना पानी डालकर पका ना, परंतु पकजाने पर पानी को फेंकना नहीं। चावल के

बारे में भी यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि जहां तक हो सके अत्यंत शुभ्र चावल का सेवन नहीं करना चाहिए। चावल के ऊपर जो भूसी या धुंधला लाल पदार्थ होता है उसमें स्नेह, क्षार तथा जीव-द्रव्य बहुत होते हैं। यह भूसी एकदम निकाल देने से चावल यद्यपि मोती जैसा सुंदर दिखाई पड़ता है तथापि वह शरीर-पोषण के लिये हानिकारक है। इसके सेवन से वातबलासक नामक रोग पैदा होता है। जिस कारण से सफेत चावल का सेवन नहीं करना चाहिए उसी कारण के लिये चावल बहुत पानी में गालकर ज्यादा पानी निरुपयोगी समझकर नहीं फेंक देना चाहिए। नहीं तो क्षार, जीवतत्वादि आवश्यक घटकों से शरीर वंचित होकर चावल की पौष्टिकता कम हो जाती है।

खाद्य-द्रव्य पकाने की चार रीतियां है; १. उबालना, २. भुनना, तलना, ४ और भापना या भाप की सहायता से पकाना। इन चारों में तलने की रीति सब से खराब और स्वास्थ्यहानिकर है। तलने से पदार्थ दुष्पाच्य और विदाही होते हैं और उनका लगातार सेवन अग्निमांद्य, अम्लपित्त इत्यादि रोग पैदा कर देता है। भापने की रीति शालिजातीय पदार्थों के लिये विशेष फायदे मंद है। उबालने से खाद्यद्रव्यों के ऊपर जो दुष्पाच्य आवरण रहता है वह फूट जाता है और खाद्यद्रव्य पचन होने में बहुत सुभीता होता है! यद्यपि उबालने से उनका स्वाद कुछ कम हो जाता है तथापि दूसरी पद्धति की अपेक्षा उबालने से पदार्थ अधिक सुपाच्य बन जाता है।

यद्यपि पकाने से बहुत फायदे होते हैं तथापि कई प्रकार के खाद्य पदार्थ बिना पकाये ही खाना स्वास्थ्यवर्धक है। आयस्टर नामक एक

जलवासी प्राणी है जिसका सेवन हमेशा बिना पकाये ही करना पथ्यकर है, क्योंकि पकाने से वह दुष्पाच्य हो जाता है तथा उसके भीतर जो पाचक फर्मेंट रहते हैं वे भी नष्ट हो जाते हैं। दूध एक दूसरा ऐसा पदार्थ है कि जिसका सेवन उबाले हुए अवस्था की अपेक्षा कच्चे अवस्था में अधिक लाभदायक है। तथापि ऐसा दूध हमेशा धारोष्ण, स्वस्थ गौ के स्तन से, स्वच्छ हाथों से, स्वच्छ बर्तन में निकालकर सांद्र कपड़े से छानकर पीना चाहिये। ऐसे धारोष्ण दूध में जीवद्रव्य तथा फर्मेंट बहुत रहते हैं जोकि उबालने से नष्ट हो जाते हैं। तथापि धारोष्ण दूध मिलना आजकल बहुत ही मुश्किल हो गया हो गया है। बाजारों में जो दूध मिलता है उसे उबालकर ही पीना चाहिए। फल और कंद ये तीसरे प्रकार के खाद्यद्रव्य हैं जोकि हम कच्चे अवस्था में खा सकते हैं तथा खाना आवश्यक है। तथापि उनको भली-भाँति देख भाल करके अच्छे पके हुए और खूब साफ धोकर खाना चाहिए। खाद्यपदार्थ पकाने में यह ध्यान रखना चाहिए कि तेज अग्नि पर पके हुए पदार्थों की अपेक्षा मंदाग्नि पर पका हुआ पदार्थ अधिक लाभदायक होता है, क्योंकि तेजाग्नि पर पकाने से पदार्थों का बहुत सा उपयोगी भाग जल जाता है। इसलिये रसोई बनाने में कोई पदार्थ आवश्यकता से अधिक तथा कम न पकाया जाय इस बात पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। उत्तम पका हुआ पदार्थ खाने में स्वादिष्ट, खुशबूदार तथा अधिक से अधिक पोषक हुवा करता है।

भोजन कैसा होना चाहिये।

विशिष्टमिष्टसंस्कारैः पथ्यैरिष्टै रसादिभिः।
मनोज्ञं शुचिनात्युष्णं प्रत्यग्रमशनं हितम्॥

नचैकरससेवायां प्रसज्जेत कदाचन ।
शाकावरान्नभूयिष्टमत्युग्र लवणंत्यजेत् ॥
अचोक्तं दुष्टमुत्सृष्टं पाषाणतृणलोष्टवत् ।
द्विष्टं व्युषितमस्वादु पूति चान्नं विवर्जयेत् ॥
चिरसिद्धं स्थिरं शीतमन्नमुष्णीकृतं पुनः ।
अशांतमुपदग्धंच तथा स्वादु न लक्ष्यते ॥
तस्मात् सुसंस्कृतं युक्त्या दोषैरेतैर्विवर्जितम् ।
यथोक्त गुणसंपन्नमुपसेवेत भोजनम् ॥सुश्रुत॥

१—भोज्य-पदार्थ दर्शन, गंध और रुचि में स्वादु होना चाहिये। जिन्हें देखकर अरुचि या घृणा उत्पन्न होती है ऐसे पदार्थ नहीं खाना चाहिये, क्योंकि पाचकरस उनको पचाने के लिए, घृणा उत्पन्न होने के कारण से, तयार नहीं होता और ऐसे पदार्थ खाने से अपचन उत्पन्न होता है।

२—बासी भोजन कभी सेवन नहीं करना चाहिये। ताजे भोजन का सेवन स्वास्थ्यवर्धक है। एक तो ताजे भोजन में गर्मी रहती है और वह पचन क्रिया को भली-भांति उत्तेजित करके अन्न पचाने में सहायभूत होती है। बासी भोजन में पोषकद्रव्य कम हो जाते हैं और वह सड़ने लगता है। जब तक उसमें से दुर्गंध पैदा नहीं होती तब तक हमें उसकी सडन नहीं मालूम होती परंतु दुर्गंध आने के पहिले ही सड़न शुरू हुवा करती है।

३—खाने के पदार्थ शरीर के हरारत के बराबर यानि मंदोष्ण होना चाहिये। अति उष्ण या अति शीत नहीं खाना चाहिये।

४—सदैव एक-सा भोजन करना ठीक नहीं। खाद्य-द्रव्यों का हमेशा परिवर्तन करके तरह तरह के पदार्थों का सेवन करना चाहिये। दूसरा इस बात पर आवश्य ध्यान रखना चाहिये कि शरीर के वृद्धि, विकास, शक्ति तथा उष्णता के लिये जिन जिन उपादानों की जरूरत जिस अनुपात में सामान्यतः होना चाहिये उस अनुपात में है या नहीं। नहीं तो ऐसा अप्रमाणशीर आहार यद्यपि पर्याप्त मात्रा में सेवन किया जाय तो भी शरीर का स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा।

५—भोज्य-पदार्थ अधपके या जले हुए अवस्था में नहीं खाना चाहिये।

६—भोज्य-द्रव्यों की मात्रा में तथा प्रकार में देश, ऋतु, तथा व्यवसाय-भेद के अनुसार फर्क करके सेवन करना चाहिये।

७—हरे साग-सब्जी पर्याप्त मात्रा से सेवन करना जरूरी है तथापि उनका अति सेवन नहीं करना चाहिये।

८—भोजन में हमेशा सादगी रखना चाहिये। गरम मसाले, अचार, चटनी इत्यादि बहुत खाने की प्रथा नहीं रखना चाहिये। हमेशा के भोजन में इनका सेवन जितना ही कम हो सके उतना लाभदायक है। यदि मिष्टान्न खाना हो तो उनका थोड़ा सेवन लाभदाय होता है, क्योंकि वे पचन-क्रिया में कुछ मदद करते हैं।

९—भोजन की मात्रा अपने अनुभव पर ऐसी रखना चाहिये कि जिससे शरीर को स्फूर्ति, शक्ति, तथा उत्तेजना मालूम हो और पचने में सुगमता हो।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।

हितंच परिणामे यत्त दाद्यं भूतिमिच्छता ॥ महाभारत ॥

१०—खाद्य-पदार्थों में जिनको फलों का सेवन करना मुमकिन है, उन्हें प्रति दिन मौसम के अनुसार थोड़े फलों का सेवन स्वास्थ्यप्रद है ।'

भोजन कितना खाना चाहिये

आहार की मात्रा के बारे में पिछले अध्याय में बहुत कुछ बतलाया है, तथापि यह ध्यान में रखना चाहिये कि आहार का कोई एक नियम सबके गले में नहीं बाँधा जासकता। मनुष्यों का शरीर कोई लोहे की कल या एँजिन नहीं है कि हिसाब से कोयला और जल देकर जितना काम चाहे उतना लेते रहे । प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रकृती, व्यवसाय इत्यादि भेदों के अनुसार अपने अनुभव पर अपने भोजन की मात्रा नियत करना चाहिये । तराजू के बांट से यह काम ठीक नहीं हो सकता। सामान्यतः काम-काज से बिलकुल हाँथ खींचकर शय्या पर पड़नेवालों के लिये शरीर के भार के १६०वें भाग के बराबर निर्जल आहार चाहिये। मामूली परिश्रम करनेवालों के लिये उनके शरीर के भार का ११०वें भाग के बराबर अन्न मिलना चाहिये । साधारणतः हमारे खाद्य-द्रव्यों में बराबर पानी रहता है इसलिये सजल आहार इससे दुगुना लेना चाहिये। उस आहार में शिशु, बालक, मानसिक श्रम करनेवालों के लिये प्रोटीन जातीय उपादान अधिक और शारीरिक श्रम करनेवालों के लिये शालि-जातीय द्रव्य अधिक होना चाहिये ।

परंतु रोजाना जो आहार हम अनेक खाद्य-द्रव्यों का लेते हैं उसमें तोलकर मात्रा का निर्णय करना असंभव तथा अनहोनी-सी बात है। आहार

मात्रा के लिये कोई स्वाभाविक ही ऐसा नियम होना चाहिये कि, जिसका पालन आहार लेते समय आहार-द्रव्यों के अनुसार किया जा सकता हो। इस मात्रा का प्रमाण यह है।

मात्राप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यते।
गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते ॥ वाग्भट ॥

जितना आहार सुख-पूर्वक पचसके वही आहार की मात्रा है। यदि देर से हजम होनेवाले पदार्थ हों तो आधेमात्रा में खाना चाहिये, और हलके हो तो करीब पेट भर खाना चाहिये। सदैव भूख से कुछ कम-खाना हितकारक है। भोजन के मात्रा का और एक दूसरा नियम है।

अन्नेन कुक्षेर्द्वौ भागौ पानेनैकंप्रपूरयेत्।
चतुर्थं पवनादीनामाश्रयायनिषेवयेत् ॥ वाग्भट ॥

आमाशय के चार भाग समझकर दो भाग अन्न, एक भाग पानी और एक भाग वायु के संचरण के लिये खाली रखना चाहिये। भोजन मात्रानुरूप हुआ है या नहीं यह जानने के लिये यह नियम है।

अपीडनं भवेत् कुक्षेः पार्श्वयोरवपीडनम् ॥
अन्नेन हृदयाबाधो जठरस्यतु गौरवम्।
प्रीणनं चक्षुरादीनां शमनं क्षुत्पिपासयोः ॥
उच्छ्वासश्वास हास्यादि कथासु सुखवर्तनम्।
सुखेन परिणामः स्यादन्नेभुक्ते दिवानिशि ॥

जिनको अपना स्वास्थ्य चिरंतन रखने तथा रोगों का जड़ अजीर्ण से बचने की अभिलाषा हैं उनको आहार-मात्रा पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये। एकबार किया हुआ भोजन पचन होने के बाद

दूसरा भोजन करना चाहिये। जो लोग मात्रा से अधिक खाते हैं वे अपने हाथों से ही अपनी कब्र खोदते हैं। रात के भोजन में हमेशा सुपाच्य पदार्थ तथा कुछ कम मात्रा में खाना चाहिये।

किंचिदूनं समश्नीयाद्‌दुर्जरं तत्र वर्जयेत्। योगरत्नाकर।

जिस प्रकार अधिक सेवन में हानि है उसी प्रकार कम मात्रा में खाने से शरीर की दुर्बलता ग्लानि इत्यादि पैदा होती है।

हीनमात्रमसंतोषं करोति च बलक्षयम्।
आलस्यगौरवाटोपसादांश्च कुरुतेऽधिकम्॥ सुश्रुत॥

संक्षेप में भोजन के मात्रा में यह कहना ठीक है कि उसका प्रमाण कोई तौल से नियत नहीं हो सकता। जितना भोजन सुख से पचे, शरीर को स्फूर्ति तथा शक्ति दे उतना ही खाना चाहिये।

भोजन किस समय करना चाहिये

प्रसृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे
विशुद्धे चोद्गारे क्षुदुपगमने वातेऽनुसरति।
तथाऽग्नावुद्रिक्ते विशद करणे देहे च सुलघौ
प्रयुंजीताहारं विधि नियमितः कालः स हि मतः॥ वाग्भट

शरीर की सुस्थिति के लिये प्रति दिन भोजन करना आवश्यक है परंतु उस समय भोजन करना चाहिये जब उसकी आवश्यकता प्रतीत हो। जब शरीर को खाद्य-द्रव्यों की आवश्यकता होती है, क्षुधा प्रतीत होने लगती हैं; जैसी पानी की आवश्यकता होने पर प्यास मालूम होती है। इस कारण से भोजन का समय ज्ञात होने के लिये किसी घड़ी की जरूरत नहीं है। भूख लगना यही भोजन का काल है। तथापि भूख में सच्ची

और झूठी दो प्रकार की भूक होती है। सच्ची भूक लगने से शरीर में बेचैनी नहीं होती, चित्त में शांति और एक प्रकार का आनंद होता है भोजन में रुचि होती है और चटनी, अचार इत्यादि कृत्रिम रुचिकारक प्रदार्थों की आवश्यकता नहीं रहती। झूठी भूख में प्रथम बहुत भूख मालूम होती है लेकिन भोजन सामने आते ही वह काफूर हो जाती है, तथा रुचि उत्पन्न करने के लिये चटनी, अचार इत्यादि पदार्थों की जरूरत होती है।

जिस समय मनुष्य को सची भूख मालूम होती है उस समय जरूर भोजन का सेवन करना चाहिये। भोजन न करने से ग्लानि, बलक्षय, श्रम इत्यादि पैदा होते हैं और शरीर क्षीण हो जाता है। अतएव सच्चीभूख लगने पर सैकड़ों कामों को छोड़कर भोजन करना चाहिये।

शतं विहाय भोक्तव्यम्।

जिस तरह सच्ची भूख लगने पर भोजन न करना हानिकारक है उसी तरह भूख न लगने पर भी भोजन न करना हानिकारक है। पहिले किया हुआ भोजन से जब तक आमाशय विमुक्त नहीं हुआ तब तक दूसरे भोजन के सेवन के लिए वह तयार नहीं रहता और यह भूख न लगने का मतलब है। यदि इसी अवस्था में भोजन किया जावे तो आमाशय उसको पचाने का काम भलीभाँति नहीं कर सकता। इस कारण से अजीर्णादि नैमित्तिक रोग पैदा होते हैं। यदि सदा के लिए ऐसा भोजन करने की आदत रखी जाय तो पचनसंस्थान निकम्मा हो जाता है।

जीर्णे हितं मितं चाद्यात्। वाग्भट।

यद्यपि भूख लगने पर भोजन करना ठीक है तथापि सुभीते के लिए

उसका कुछ समय नियत करना ठीक होता है। जो लोग समय पर भोजन करते हैं नीरोग रहते हैं। इसके विपरीत जो लोग समय का ध्यान न रखकर जब जी में आया तभी खाने लगते हैं, वे प्रायः बीमार रहते हैं। इस कारण से स्वास्थ्य-रक्षण के लिए नियत समय पर भोजन लेना अत्यंत पथ्यकर है।

कालभोजनमारोग्यकराणाम्। चरक।

अर्थात् समय पर भोजन करना आरोग्यकारक है। किसी दिन भोजन के समय यदि भूख मालूम न हो तो भोजन करने की अपेक्षा अनाहार अधिक स्वास्थ्यप्रद होता है।

भोजन की व्यवस्था ऐसी रखना चाहिए कि नियत समय पर प्रतिदिन भूख लगा करे। एक समय किया हुआ भोजन प्रायः ५—६ घंटे में हजम हो जाता है, यदि इस अवधि में कुछ न खाया जाय तो समय पर भूख जरूर लग जायगी। जो लोग दिन भर कुछ-न-कुछ खाया करते हैं उनको भोजन के समय भूख नहीं लगती। ऐसे लोगों को कभी १० बजे, कभी १२ बजे, कभी बड़े तड़के भूख लगती है और कभी सारे दिन में भी भूख नहीं लगती। इस प्रकार अव्यवस्थित भोजन करना ठीक नहीं।

असमय भोजन करने में अनेक दोष हैं।

अप्राप्तकालं भुंजानः शरीरे ह्यलघौ नरः।
तां तां व्याधिमवाप्नोति मरणं वा नियच्छति॥
अतीतकालं भुंजानो वायुनोपहते नले।
कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं द्वितीयं नचकांक्षति॥सुश्रुत॥

भोजन के नियत समय के पहिले भोजन करने से तरह तरह की

बीमारियाँ होकर मृत्यु तक होने की सम्भावना रहती है। भोजन के समय को बिता कर भोजन करने से जठराग्नि मन्द होकर भोजन देर में पचता है और दूसरे समय भोजन करने की इच्छा नहीं होती। तात्पर्य नियत समय पर भोजन करना स्वास्थ्य-रक्षण के लिए उचित है।

दिन में कितनी बार भोजन करना इसका भी निर्णय प्रत्येक मनुष्य को अपनी शारीरिक स्थिति, व्यवसाय इत्यादि का विचार करके करना चाहिए। सामान्यतः दो बार भोजन किया जाता है।

सायं प्रातर्मनुष्याणां भोजनं विधिनिर्मितम्।

यह नियम बहुत ही अच्छा है, तथापि सब मनुष्यों के लिए यह ठीक नहीं है। इस नियम में व्यवसाय भेद के अनुसार थोड़ा भेद करना जरूरी है। शारीरिक श्रम करनेवाले किसान, मजदूर इत्यादि लोग अपना भोजन शीघ्र हजम करते हैं उनके लिए दो समय के सिवाय तीसरे समय में सुबह को खाना आवश्यक है। भोजन कितनी बार करना चाहिए उसका सामान्य नियम यह है।

याममध्ये न भोक्तव्यं याम युग्मं न लंघयेत्।
याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः॥योगरत्नाकर॥

एक भोजन के बाद दूसरा भोजन चार घंटे के अन्दर नहीं लेना चाहिए, क्योंकि भोजन के आमाशयिक पचन के लिए ज्यादा-से-ज्यादा चार घंटे लगते हैं। एक भोजन करने के बाद दूसरे भोजन में आठ घंटों से अधिक अवधि नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे बल क्षय होता है। विशेष करके रात्रि के भोजन के बाद १२ से १६ घंटों तक भोजन न लेकर काम करना बलनाशक है। इसलिए सुबह को शारीरिक श्रम करने

वालों के लिए करीब करीब पूरा भोजन और मानसिक श्रम करनेवालों के लिए दूध जैसा सुपाच्य और पौष्टिक पदार्थ का थोड़ा सेवन स्वास्थ्य रक्षण की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

रात्रि का भोजन हमेशा पहले पहर में लेकर उसके बाद दो घण्टों तक सोना नहीं चाहिये, तथा खाने में दुष्पाच्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

रात्रौतु भोजनं कुर्यात् प्रथम प्रहरांतरे।
किंचिदूनं समश्नीयाद् दुर्जरं तत्र वर्जयेत् ॥योगरत्नाकर॥

भोजन कैसा खाना चाहिये

काले सात्म्यं शुचि हितं स्निग्धोष्णं लघु तन्मनाः।
षड्रसं मधुरप्रायं नातिद्रुतविलंबितम्।
स्नातः क्षुद्वान् विविक्तस्थोधौतपादकराननः॥
समीक्ष्य सम्यगात्मानमनिंदन्न ब्रुवन् द्रवम्।
इष्टमिष्टैः सहाश्नीयाच्छुचि भक्तजनाहृतम् ॥वाग्भट॥

१—भोजन करने के पहिले स्नान करके शुचिभूत होकर तथा शुभ्र धूत वस्त्र परिधान करके भोजन करना चाहिए। तथापि यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि स्नान करते ही भोजन करना ठीक नहीं तथा भोजन करते ही स्नान करना ठीक नहीं। यदि स्नान प्रातःकाल में ही हो चुका हो तो भोजन के पहिले हाथ पाँव मुँह अच्छी तरह से धोकर तथा वस्त्र बदल कर भोजन करना चाहिए। बाहर घुमने में हाथ, पाँव मुख इत्यादि पर धूलि इत्यादि खराब चीजें बैठ जाती है और यदि उनको पानी से न धोया जाय तो ये पेट में जाने की संभावना रहती

है। धूलि स्वास्थ्य की दृष्टि से कितनी खराब है उसका विवरण पीछे (पृष्ठ ८) हो चुका है। इसलिये हाथ पाँव धोये बिना कभी भी भोजन नहीं करना चाहिये।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥मनुस्मृति॥

२—परिश्रम करने के बाद आते ही भोजन करना ठीक नहीं। घण्टा आधा घण्टा आराम करके तब भोजन करना चाहिए। परिश्रम से अन्य अवयवों की भांति पचन-यन्त्र भी थके हुए रहते हैं। जिस रक्त से पचनसंस्थान अन्न का पचन करता है वह बहुतायत से परिश्रम करने वाले मांसपेशियों में अधिक होता है, क्योंकि परिश्रम के समय उन्हें पोषण की आवश्यकता अधिक होती है। अतएव परिश्रम करने के पीछे थोड़ी देर आराम करके जब थकान दूर हो जाय तब भोजन करना चाहिये।

३—भोजन के समय चित्त शांत तथा काम क्रोधादि मानसिक विकार रहित होना चाहिए, क्योंकि ऐसे, अवस्था में अन्न का पचन ठीक नहीं होता।

ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।

प्रद्वेष युक्तेन च सेव्यमान मन्न न सम्यक् परिपाकमेति॥सुश्रुत॥

४—प्रत्येक ग्रास को अच्छी तरह से चबा-चबा कर खाना चाहिए। पचन क्रिया का सबसे पहिला काम मुख में ही शुरू होता है। खूब चबाने से भुक्त-द्रव्य महीन रूप में होकर आसानी से गले के नीचे उतर जाता है ओर निगलने में दिक्कत नहीं होती। बिना चबाए खानेवालों के छाती में आहार का गस्सा अटक जाना एक सामान्य बात है और उस

गस्से को नीचे उतरवाने के लिए पानी की जरूरत पड़ती है। चबाने से भोजन स्वादिष्ट मालूम होने लगता है। मिर्च मसाले इत्यादि कृत्रिम स्वाद देने वाले पदार्थों की आवश्यकता नहीं होती। चबाने से दाँत तथा जबड़ों की शक्ति बढ़ जाती है, भोजन में तृप्ति होती है, और अन्न पचने में आसानी होती है और थोड़े ही आहार से शरीर का पोषण हो सकता है; क्योंकि उनमें से ज्यादा से ज्यादा भाग सारभूत होकर सोख जाता है। आधे चबे आहार द्रव्यों से आधे से अधिक भाग वैसा ही किट्ट में निकल जाता है।

अन्न अच्छी तरह चबाने से खूब महीन होकर पाचक-रस उसके साथ भलीभाँति मिल सकता हैं और अन्न का पचन ठीक होता है। यदि अन्न बिना चबाए ही खाया जाय तो पाचक-रस उसके साथ भलीभाँति नहीं मिल सकता और अन्न आंतों में आधा पका रह कर सड़ने लगता है। इसी कारण से भोज्य-द्रव्य महीन और तरलावस्था में हो तो पचने में हलका होता है।

पेयलेह्याद्य भक्ष्याणां गुरुविद्याद्यथोत्तरम् ॥ सुश्रुत ॥

परन्तु चबाने का सबसे प्रधान कार्य भुक्त-द्रव्यों को लार के साथ मिला देने का है। लार में ट्यालिन (Ptyalin) नामक एक पदार्थ होता है जिसके प्रभाव से आहार का शालिपिष्टमय भाग एक प्रकार के शर्करा में परिवर्तित हो जाता है, और इसी कारण से चावल रोटी इत्यादि कार्बोहाइड्रेटयुक्त पदार्थ खूब चबाने के बाद स्वादिष्ट मालूम होने लगते हैं। जनसाधारण समझते हैं कि जठर ही एक अन्न पचन का आधार है, परंतु यह कल्पना गलत है। आहार-द्रव्यों के जितने उपादान हैं

उनका पचन करने के लिए शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार के पाचक-रस या अग्नि होते हैं और प्रत्येक का कार्य भी विशिष्ट हुआ करता है।

भौमाप्याग्नेय वायव्याः पंचोष्माणः सनाभसाः ।
पंचाहार गुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पंचत्यनु॥वाग्भट॥

शालिपिष्ट-द्रव्यों का पचन करने की शक्ति लाला और अग्न्याशय रस में जो अमिलोप्सिन नामक (Amylopsin) पाचक द्रव्य है उसमें होती है। इन दोनों पाचक-द्रव्यों की पाचन-प्रणाली भिन्न-भिन्न होती है और अमिलोप्सिन का कार्य पूरा होने के लिये कार्बोहाइड्रेट के ऊपर लार की क्रिया होना अत्यन्त आवश्यक है। खूब चबाने से यह कार्य ठीक होता है और पचन का कार्य मुख में ही शुरू होता है।

प्रत्येक ग्रास को इतना चबाना चाहिए कि उसके पिष्टमय पदार्थ शर्करा में परिवर्तित होकर-उसमें मिठास आ जाय। अच्छी तरह चबाकर खाने से आमाशय तथा आँतों का काम हलका होकर अन्न पचन सहज में होता है। जो भोजन बिना चबाए खाया जाता है उसको बारीक करने का काम आंतों से होता है तथापि यह उनका नैसर्गिक कार्य नहीं है। अधिक कार्य भार पड़ जाने से आंत निर्बल होकर मंदाग्नि, अजीर्ण इत्यादि रोग पैदा होते हैं। आँतों में आधा कच्चा अन्न पड़ जाने से वह सड़ने लगता है और उसका विष रक्त में मिलकर (Auto intoxication) स्वास्थ्य का नाश हो जाता है।

अन्त में यह बतला देना आवश्यक है कि प्रत्येक ग्रास को चबाने की गिनती नियत करना मुश्किल है, तथापि सामान्य नियम यह ध्यान में रखना चाहिए कि जब तक भोजन का असली स्वाद न बना रहे तथा

निगलने में दिक्कत पड़े तब तक बराबर चबाते रहना चाहिये। भोजन को चबाकर खाना यह प्रकृति की आज्ञा है। प्राणियों को मुख में जो दंत पंक्ति दी गयी है वह केवल उनकी सौन्दर्य वृद्धि करने के लिये नहीं है बल्कि भोज्य-द्रव्यों को चबाकर खाने के लिये है। इस आज्ञा का पालन न करने से अजीर्ण मंदाग्नि इत्यादि रोगों के रूप में उसका दंड अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

५—भोजन करने में जल्दीबाजी या देर नहीं करना चाहिये। कई लोग भोजन के समय ही उतावले देखने में आते हैं। चटपट दो ग्रास गले के नीचे पानी की सहायता से उतरकर छुट्टी पा जाना उनका भोजन होता है। यह आदत बड़ी खराब है। इसी तरह बहुत देर तक भोजन करना भी ठीक नहीं है।

६—भोजन के समय ज्यादा पानी पीना ठीक नहीं। यदि भोजन ठीक चबा चबाकर खाया जाय तथा उसमें मिर्च-मसाले अधिक मात्रा में न हों तो पानी की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। अधिक पानी पीने से पाचक-रस की शक्ति कम हो जाती है (पृष्ठ ९६)।

७—भोजन के समय बातचीत करना, हँसना ठीक नहीं। ऐसा करने से भोजन में देरी होती है और बोलने हँसने से आहार का कण श्वास में जाकर खाँसी, धसका इत्यादि होते हैं, और कभी मृत्यु तक होने की संभावना होती है।

आहार का सेवन किस तरह करना चाहिये इसका उत्कृष्ट विवरण चरकसंहिता विमानस्थान में दिया है।

तत्रेदमाहार विधिविधनमारोगाणामपिचातुराणां हितं केषां चित्काले प्रकृत्यैव हिततमं भुञ्जानानां भवति ।

१—उष्णमश्नीयात् । उष्णंहि भुज्यमानं स्वदते, भुक्तञ्चाग्नि मौदर्यमुदीरयति, क्षिप्रञ्च जरांङ्गच्छति, वातञ्चानुलोमयति, श्लेष्माणंच परिशोषयति । तस्मादुष्णमश्नीयात् ।

२—स्निग्धमश्नीयात् । स्निग्धं हिभुज्यमानं स्वदते, भुक्तमौदर्यं मग्निमुदीरयति, क्षिप्रं जरांगच्छति, वातमनुलोमयति, दृढी करोति शरीरोपचयं, बलाभि वृद्धिञ्चोप जनयति, वर्ण प्रसाद मपि चाभि निर्वर्तयति । तस्मात् स्निग्धमश्नीयात् ।

३—मात्रावदश्नीयात् । मात्रावद्धि भुक्तं वातपित्तकफानप्रपी-डय दायुरेव वर्धयति केवलम् । सुखं सम्यक् पक्वं विड्भूतं गुदमनु-पर्येति, नचोष्माणमुपहंति, अव्यथंच परिपाक मेति । तस्मान्मात्रा वदश्नीयात् ।

४—जीर्णेऽश्नीयात् । अजीर्णे हि भुञ्जानस्य पूर्वस्याहारस्य रसमपरिणतमुत्तरेणाहाररसेनोपसृजन् सर्वान् दोषान् प्रकोप-यत्याशु जीर्णे तु भुञ्जानस्य स्वस्थान स्थेपु दोषेष्वग्नौचोदीर्णे जाता याञ्च बुभुक्षायां विवृत्तेषुच स्रोतसां मुखेषु चोद्गारे विशुद्धे हृदये विशुद्धे वातानुलोम्ये विसृष्टेषुच वातमूत्र पुरीषवेगेषु जीर्णेऽभ्यव-हृतमाहारजात सर्व शरीर धातूनप्रदूष्यदायुरेव विवर्धयति केवलम् । तस्माज्जीर्णेऽश्नीयात् ।

५—इष्टे देशेऽश्नीयात् । इष्टे हि देशे भुंजानो नानिष्ट देशजैर्म

नो विघातकरैर्भावैर्मनो विघातं प्राप्नोति। तथेष्टैः सर्वोपकरणै स्तस्मा दिष्टे देशे तथेष्ट सर्वोपकरणञ्चाश्नीयात्।

६—नातिद्रुतमश्नीयात्। अतिद्रुतंहि भुञ्जानस्यउत्स्नेहनमव सदनं भोजनस्याप्रनिष्टानं भोज्यदोषसाद्गुणयोपलब्धिश्चननियता। तस्मान्नातिद्रुतमश्नीयात्।

७—नातिविलंबितमश्नीयात्। अतिविलंबितं हिभुञ्जानो न तृप्तिमधिगच्छति, बहु भुंक्ते, शीतो भवति, चाहारजातं विषमपाकं च भवति। तस्मान्नाति विलंबितमश्नीयात्।

८—अजल्पन्नहसन्तन्मनाभुञ्जीत। जल्पतो हसतोऽन्य मनसो वा भुञ्जानस्य त एवहि दोषा भवंति य एवातिद्रुतमश्नतः। तस्मादजल्पन्नह सन्मना भुंजीत।

९—आत्मान मभिसमीक्ष्य भुंजीत सम्यक्। इदं ममोपशेते इदं नोपशेते इति विदितं ह्यस्यात्मना आत्म्यसाम्यं भवति। तस्मादा त्मानमभिसभीक्ष्य भुञ्जीत सम्यगिति।

चरक संहिता विमान स्थान अध्याय १

भोजनोत्तर

एवं भुक्त्वा समाचामेच्चूषग्रहण पूर्वकम्।
भोजनेदंतलग्नानि निर्हृत्याचमनंचरेत्॥योगरत्नाकर॥
दंतांतरगतं चान्नं शोधनेनाहरे च्छनैः।
कुर्यादनिर्हृतं तद्धि मुखस्यानिष्ट गंधताम्॥
भुक्त्वाराजवदासीत यावदन्नक्लमोगतः।
ततः पाद शतं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत्॥

शब्द रूपरसान् गंधान् स्पर्शांश्च मनसः प्रिथान्।
भुक्तवानुपसेत तेनान्नं साधुतिष्ठति ॥ सुश्रुत ॥

भोजन करने के पश्चात् स्वच्छ और शुद्ध जल से मुख साफ करना चाहिये और दांतों के बीच में जो अन्न के कण रह जाते हैं उनको वहां से निकलवाना चाहिये। यदि ये अन्न के कण दांतों के बीच में रह जाँय तो समय पाकर वे वहां सड़ने लगते हैं और मुख में दुर्गंध आने लगती है। इनके सड़ने से दांतों के जड़ भी सड़कर उनके चारों ओर शर्करा (Tarter) जमा होने लगती और उसमें पूयजनक जीवाणु अपना डेरा जमा देते हैं। इस रोग को पूयदंत (Pyorrhoea alveolaris) कहते हैं। यह रोग यद्यपि प्रथम हलकासा मालूम होता है तथापि परिणाम में अत्यंत भयंकर है, क्योंकि भोज्य पदार्थ तथा थुक के साथ पूय रूप विष उदर में प्रविष्ट होकर नाना प्रकार के चिर स्थायी पचन संस्थान तथा दूसरे संस्थान के रोग पैदा कर देता है। दूसरे इस रोग से दांत जलदी निकम्मे होकर गिर जाते हैं, जिससे भी स्वास्थ्य हानि होती है, क्योंकि पचन क्रिया का मुख्य काम दांतों से ही हुआ करता है। तीसरे यह रोग होने के कारण मुख से इतनी बदबू आने लगती है कि ऐसे रोग से पीड़ित मनुष्य के सामने या पास बैठना भी मुश्किल हो जाता है। उपर्युक्त कारणों से भोजन करने के पश्चात मुख अत्यंत साफ रखना चाहिये। इस कारण को उपलक्ष्य में रखकर वाग्भट ने मुख मार्जन भोजन करने के बाद करने के लिये कहा है।

प्रात भुंक्त्वाच...भक्षयेद्दंतधवनम् ॥ वाग्भट ॥

उसके बाद कुछ थोड़ी टहल-पहल करके आराम करना चाहिये। अँग्रेजी में भी एक कहावत है।

Sit awhile after dinner.

इसका कारण यह है कि पचन क्रिया का आरंभ होते ही पचन के स्थान की ओर रक्त का अभिसरण विशेष रूप से होने लगता है और यह होना भी प्रचन क्रिया की दृष्टि से आवश्यक है क्योंकि इस रक्त की सहायता से पाचक रस पर्याप्त मात्रा में बनकर अन्न का पचन ठीक तौर से कर सकता है। इसलिये भोजन करने के पश्चात् कुछ देर तक शारीरिक या मानसिक श्रम नहीं करना चाहिये, क्योंकि श्रम करने से रक्त का प्रवाह उस ओर अधिक परिणाम में जाने लगता है जिससे श्रम होता है। श्रम करने से पाचक यंत्र की ओर रक्त की कमी होकर पचन क्रिया में बाधा पड़ती है।

व्यायामंच व्यवायंच धावनं पानमेवच।
युद्धं गीतंच पाठंचमुहूर्तं भुक्त्वांत्यजेत् ॥ हारीत ॥
भुक्त्वोपविशतस्तंद्राशयानस्य तु पुष्टता।
आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥योगरत्नाकर॥

उपसंहार

आहार जीवन प्राणाः ह्यव्यापन्नाः सुसेविताः।
देहं तथा धारयंति यथाऽगारं हि धारणाः ॥

हवा, पानी, और भोजन इनका शरीर के साथ क्या संबंध है, किस अवस्था में ये शरीर के धारक होते हैं, किस अवस्था में शरीर के मारक

होते हैं, किस अवस्था में इनका सेवन करना चाहिये; इनका वर्णन खूब स्पष्ट रूप से अबतक हो चुका है। इससे यह स्पष्ट है कि हवा, पानी, और भोजन सचमुच शरीर धारण करने वाले तीन आधार स्तंभ हैं। जिसको अपनी स्वास्थ्य रक्षण करने की इच्छा है उसको सर्व प्रथम इन स्तंभों को ठीक रखना चाहिये। शरीर एक तिखंबी इमारत है। इसका एक भी खंब दुर्बल या खराब हो जाय तो इमारत गिर पड़ती है।

अंत में महर्षि अग्निवेशजी के शब्द में भोजन की महती वर्णन करके इस ग्रंथ की पूर्ति करता हूँ।

हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निं समाहितः।
अन्नपानसमिद्भिर्ना मात्रा कालौ विचारयन्॥
आहिताग्निः सदापथ्यान्यन्तराग्नौ जुहोतियः।
दिवसे दिवसे ब्रह्म जपत्यथ ददातिच॥
नरं निश्रेयसे युक्तं सात्म्यज्ञं पान भोजने।
भजंते नामयाः केचिद्भाविनोऽप्यंतराद्दते॥
षट् त्रिंशतं सहस्राणि रात्रीणां हितभोजनः।
जीवत्यना तुरोजंतु जितात्मा सम्मतः सताम्॥चरक॥

॥ स्वास्थ्य विज्ञान समाप्त ॥

स्वास्थ्यशिक्षापाठावलि

अर्थात्

'आरोग्य-सुभाषित-संग्रह'

इस ग्रंथ में चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश, योगरत्नाकर इत्यादि प्रमाणभूत आयुर्वेद के ग्रंथों में से स्वास्थ्य विषय पर जो कुछ लिखा है उसका संग्रह विषय के अनुसार किया है। इसमें संग्रहित किये हुए श्लोक आरोग्य के विषय पर इतने मार्ग-दर्शक हैं कि यह ग्रंथ सचमुच आरोग्य सुभाषितों का संग्रह है। इस पाठावलि का पठन आयुर्वेद तथा हाईस्कूल के विद्यार्थियों के लिये अत्यंत स्वास्थ्यप्रद है, क्योंकि कितने ही विद्यार्थी केवल स्वास्थ्य विषय की अज्ञानता के कारण अपना स्वास्थ्य गँवाकर रोग-पीड़ित हो जाते हैं।

ग्रंथ का असल मूल्य बारह आना है तथापि विद्यार्थियों के लिये आठ आना मात्र रखा है। डाक-व्यय अलग।